Chapter-3

अध्याय तृतीय

दोहा छंद का परंपरित वर्ण्य

कथ्य के सम्प्रेषण और शिल्प के आकर्षण के कारण दोहा समाज के प्रत्येक वर्ग को सहज ही ग्राह्य रहा है। फिर चाहे वह किसी भी भाव की अभिव्यक्ति ही क्यों न हो। सामाजिक कथा-व्यथा हो या प्रेम की महक, अध्यात्म हो या दर्शन, जीवनानुभव हो या आत्माभिव्यक्ति के अन्य रुप, सभी भाव विषयों को दो पंक्ति में सिमटने की सरलता मिल जाती है। बडे बडे गहरे और विराट अनुभवों को इन दो पंक्तियों में इस प्रकार बाँधा जाता है कि भाषा की सरलता एवं सजीवता भी बनी रहे और अर्थ गाम्भीर्य में कहीं शिथिलता भी नही आये।

दोहा दो पंक्तियों के तटों के बीच में कोई ठहरा हुआ पानी नहीं है, वरन् वह तो बहता हुआ दरिया है। दोहे की दो पंक्तियों के रुप में उसकी दो बाहें हैं जिसमें मन की सिमटी हुई अनुभूति का सद्यस्नात सौन्दर्य देखा जा सकता है जो हृदय की धड़कनों को तेज कर देता है।

दोहा छन्द लघुकाय होने के कारण याद रखने में सहज है अतः सुनने वाले को भी सुनने में न तो अधिक श्रम करना पडता है और न अधिक समय देना पडता है। इसी प्रकार रचनाकार को भी अपने ताजा अनुभव को तुरन्त ही अभिव्यक्त करने का अवसर मिल जाता है। सहने का तात्पर्य है कि कवि और श्रोता दोनों को ही दोहा समय की दृष्टि से मित व्ययी है यही कारण है कि साहित्य के प्रत्येक काल में अनेकानेक रचनाकारों, समाज सुधारकों ने इस दोहा छंद का भरपूर प्रयोग करते हुए अपने भावोव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनाया है।

साहित्य समाज का दर्पण है अतः जो कुछ घटनाएँ हाव-भाव, आदान-प्रदान, प्रथा कुप्रथा, मान्यतायें, परिवेश, नीति, समझ आदि-आदि समाज में प्रचलित होगा, उसी का प्रतिबिम्ब हमें साहित्य में देखने को मिलता है। प्रत्येक काल में प्रतीक बदलते हैं, उपमान बदलते हैं। भावों की अभिव्यक्ति के अनेक रूप सामने आते हैं। साहित्य में अनेक विद्याएं हैं जिनके माध्यम से रचनाकार अपने भाव व्यक्त करता है। ऐसी ही अभिव्यक्ति की एक काव्य विद्या है जिसमें दोहा छन्द सर्वोपरि है। दोहा हर युग की माँग रहा है और रहेगा क्योंकि दोहे की दो पंक्तियाँ भी दो होठों की तरह हैं वे जब खुलती है तो मन के भीतर की कोई भी बात अनकही नही रह सकती-

सुख, दुख, भव अनुभव कुँअर, प्रीति और आघात।
दोहा दो ही पंक्ति में, दो होठों की बात।।(1)

हिन्दी के सतसई साहित्य में दोहा छंद ही प्रयुक्त हुआ है। दोहा मुक्त-काव्य का प्रधान छन्द है । इसमें संक्षिप्त और तीखी भावाभिव्यंजना और प्रभावशाली लघुचित्रों को प्रस्तुत करने की अपूर्व क्षमता होती है। भावों की समाहार शक्ति इस छंद की अपनी विशेषता है।

इतिहास साक्षी है कि प्रत्येक परिवेश में इस छंद की प्रासंगिकता उपादेयता एवं सार्थकतास्वतः प्रमाणित हुई है। प्रत्येक काल में फैले दूषिक सामाजिक परिवेश व आडम्बर दो हटाने व सही मार्ग दिखाने का कार्य इसी छंद के द्वारा प्रमुखतः हुआ है। सांस्कृतिक चैतन्य को मुखरित करने तथा जन मानस को संवेदनशीलता का फलक प्रदान करने वाला दोहा अद्यतन परिवेश में पाठकों एवं कवि हृदयजनों को आकर्षित करने में अग्रणी रहा। अतः कबीर, जायसी, तुलसी बिहारी आदि जैसे दिव्यात्माओं को आशीर्वाद इस छन्द को मिला है।

भावों की व्यंजना का कोई भी विषय रहा हो । भक्ति परक नीति परक, राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक आदि से सम्बंधित वैचारिक अवधारणा ने दोहों को सर्वोच्च शिखर पर प्रतिष्ठित कर दिया है अपनी सशक्त अभिव्यक्ति लघुता एवं गेयता के कारण यह छंद श्रुतिरंध्रो के माध्यम से स्मृति पटल पर स्थायी रुप मे रचबस जाने का सामर्थ्य रखता है। इसीलिए अपने उद्‌भव काल से ही दोहा लोक चेतना, मानवीय नैतिक मूल्यों, एवं सांस्कृतिक सरोकारों का संवाहक रहा है।

दोहे दर्पन वक्त के, मौजूदा तकदीर।
किसी यक्ष की त्रासदी, नागमती की पीर।।(2)

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में अधिकांश रुप में कवि राजाश्रित ही थे। अतः कविता भी राजाश्रित हो गयी कवि का सम्पर्क आम प्रजा से टूट गया था। अतः आदिकालीन साहित्य में विशेषताह

कवियों को अपने आश्रय दाताओं की प्रसस्ति ही गाते देखा गया हैं। इस काल में राजाओं के दो ही कार्य थे एक तो अपने राज्य की सीमाओं को बढाने के लिए युद्ध करना अथवा खाली समय में भोग विलास करना इसके कारण कवियों के वर्ण्य विषय भी इन्ही के आसपास घूमते रहे और प्रसस्तियाँ गाकर अपने आश्रय दाताओं को खुश करते हुए धन प्राप्त करते रहे। अतः इस कालक्रम में जो भी साहित्य सृजन हुआ वह लगभग साधारण आदमी से कोशों दूर था। ऐसे में कबीर, दादू जैसे संतो ने समाज को सही मार्ग दिखाया। वे अपने विचारों को दोहा के द्वारा इतना तीव्र बनाकर समाज के सामने रखते थे कि उसका वार खाली नही जाता था। तत्कालीन लगभग सभी काव्य रचनाकारों ने इस छन्द में रचनाएं करके अपने कवि धर्म का निर्वाह किया है। यही विरल धारा आजतक प्रवाह मान होती चली आ रही है। जिस समाज में मानव रहता है उस समाज के प्रति उसके हाव, भाव, व्यवहार, खान पान, चलन, धर्म, जाति, शिक्षा के प्रति जो रुझान होते हैं। वह सामान्यतः प्रत्येक कालक्रम में एक समान ही देखे जाते हैं। पर जब मानव के इन व्यवहारों में भिन्नता आती है। सोच अलग होती है, तब विषमता पैदा होती है और परिणाम स्वरुप अनेक प्रकार के दोष उत्पन्न हो जाते हैं। ये दोष मानव व्यवहार, उसकी प्रतिक्रिया चाल, चलन, आदि से एक दूसरे पर दोषित होते हैं। अतः सामाजिक विकृतियाँ पैदा हो जाती है। इन विकृतियों को धार्मिक, नैतिक, सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक आदि विषयों में विभक्त कर दिया गया है। इसके मूल में तो मानव जीवन ही होता है। जिसमें विभिन्न विषय आकार लेते हैं। कहने का तात्पर्य है कि मानव जीवन का कालखण्ड कोई भी रहा हो पर उसकी परेशानियाँ, पीडायें, दुःख, सुख आदि का अनुभव एक ही समान रहा है।

दोहा छंद परम्परा से मानव अनुभूतियों का संवाहक रहा है। समाज का प्रतिबिम्ब रहा है। सो आज भी दोहा अपने इसी कर्तव्य को निभा रहा है और दुनियाँ की व्यापक उथल-पुथल को अभिव्यक्ति दे रहा है। साहित्य के परंपरित वर्ण्य विषयों को सामयिक दोहाकारों ने अभिव्यक्ति की नयी कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है। परन्तु दोंहा को सृजित करने के काव्य शास्त्रीय नियम परम्परित ही हैं।

धर्म

धर्म अर्थात् परमात्मा के प्रति श्रद्धा रखते हुए उस पर आचरण करने की राह। भारतीय समाज में तो ऐसी कई राहें रहीं हैं जिनमें हिन्दू-मुस्लिम राहों का विशेष रुप से प्रचलन रहा है। एक ही परमात्मा के दो भिन्न नाम और उसे प्राप्त करने के दो अलग-अलग मार्ग, किन्तु मंजिल एक है परमात्मा की प्राप्ति। परमात्मा को प्राप्त करने की इन्ही राहों में आने वाली विभिन्न रुकावटे,

आडम्बर, प्रयोग, तरीके, उस तक पहुंचने के विभिन्न उपाय ही धर्म या अध्यात्म से जुडे हुए हैं।

हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल में मानव समाज मे यह शोर अत्यधिक गुंजित हुआ था। धर्म को लेकर आपाधापी मची थी। अर्थात धर्म विषयक मुद्दों को लेकर जिन दोहों की रचनाएं हुई उन्हे धार्मिक दोहे कहा गया। कबीर, रहीम आदि कवियों ने ऐसे विषयों पर अनेक दोहों का सृजन किया है, कुछ दोहा द्रष्टव्य हैं।

गुरु गोबिन्द तौ एक हैं, दूजा यहु आकार।
आप पेट जीवत मरै, तौ पावै करतार।।

अकथ कहानी प्रेम की कछू कही न जाय।
गूंगे केरी सरकरा, खाइ और मुस्काय।।

कस्तूरी कुण्डलि बसै, मृग ढूंढै वन माहिं।
ऐसे घटि घटि राम हैं दुनियां देखे नाहिं।।

मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर।।

तुलसीदासजी सगुण परम्परावादी हैं। वे राम भक्त है। उन्होंने राम को केन्द्र में रखकर धार्मिक आध्यात्मिक दोहों का सृजन अवधी भाषा में किया है-

एक भरोसो, एक बल, एक आस विस्वास।
जौ धन बरषै समय सिर, जौ भरि जनम उदास।।
तुलसी या संसार में, सबसे मिलिये धाइ।
को जाने केहि भेस में, नारायण मिलि जाइ।।

भक्तिकालीन कवियों के दोहा सृजन का प्रमुखतः विषय धर्म और भक्ति से ही संलग्न था, अतः तत्कालीन सभी कवियों की लेखनी भक्तिपरक रचनाओं में अधिक हुई। भक्तिकाल के बाद रीतिकाल में वह स्वर कुछ कम हो गया और कवि और कविता दोनों दरबारी हो गये। जहाँ भक्ति काल में भगवान को केंद्र मे रखकर रचना हुई वहीं रीतिकाल में भगवान की जगह कवियों ने अपने आश्रयदाता (राजा) को स्थान दिया अर्थात अपने आश्रयदाता को भगवान कहा। परन्तु समीक्षा करके देखा जाय तो इस काल की रचनाओं के मूल में तो परम् प्रभु परमात्मा ही छिपे हैं। बिहारी, केशव, धनानंद देव जैसे दिग्गज रचनाकारों ने ऐसे-ऐसे भाषायी शब्दों का प्रयोग किया है कि उनके एक से अनेक अर्थ निकलते हैं। पाठक को जिस अर्थ में रचनाग्रहण करनी है वह कर सकता है।

काव्य अभिव्यक्ति की यह छटा अपने में महान है जो हिन्दी साहित्य के लिए वरदान व अमोल है। रीतिकाल में कवियों ने मंगलाचरण के द्वारा अपने काव्य ग्रंथ में, प्रथम स्तुतियाँ की हैं बाद में काव्य सृजन ! बिहारी कहते हैं -

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागर सोय।
जा तन की झांई परै, श्याम हरित दुति होय॥[3]

मोहिनि मूरति श्याम की, अति अद्‌भुत गति जोय।
बसति सुचित अंतर तऊ प्रतिबिम्बत जग होय॥[4]

कहत सबै बैंदी दिये, आंक दसगुनो होत।
तिय ललाट बैंदी दिये, अगनित बढ़त उदोत॥[5]

हिन्दी साहित्य का ज्यों-ज्यों समय आधुनिक काल की ओर बढता गया त्यों-त्यों दोहा की मार्मिकता भी कम होती गयी। आज का दोहा पुराने दोहे से कथ्य और अभिव्यक्ति के तौर-तरीकों में कुछ भिन्न है, प्रतीक बदले हैं और उपमानों मे कर्क भी आ गया है जिससे अभिव्यक्ति के नये नये रुप सामने आये हैं। कबीर की साखियों में जो अध्यात्म और दर्शन का रचाव था। वह आज के दोहों में कदापि नहीं है जो शिक्षा पदत्ता रहीम के दोहों में थी वह भी आजके दोहों में मुश्किल से प्राप्त होती है।

आज के दोहे मात्र परिस्थिति और मनःस्थिति की उपज हैं उनमें आजका युग झलकता है। आज का यथार्थ आँखें खोलता है और आज की भाषा बोलती है। आजकी राजनीति, आज की अर्थ व्यवस्था आज के समाज की विकृतियाँ, इन सब पर व्यंग्यात्मक प्रहार आज के दोहों की अपनी विशेषता है। दोहा हर युग की मांग रहा है सो दोहे का सृजन हो रहा है।

आधुनिक कवियों ने भी धर्म और अध्यात्म पर कही गयी अपनी अभिव्यक्ति दोहा छंद में भी प्रकट की है। आधुनिक दोहाकारों ने धर्म और संस्कृति को अपने ढंग से प्रस्तुत करके उसे सामयिक सोच से सम्पृक्त करके एक नये नजरिये के साथ प्रस्तुत किया है। इन दोहाकारों की धार्मिक दृष्टि पूर्ववर्ती मध्यकालीन दोहाकारों की तरह केवल प्रार्थना मुद्रा में झुककर वंदना के गीत गाना नहीं है।

वरन् उन्होंने धर्म के नाम पर उठ रहे विवाद और विसंगतियों को रेखांकित करने की कोशिश की है। आधुनिक दोहा छंद के प्रस्थापित कवि हरेराम 'समीप' के दोहों की छटा कुछ इस प्रकार है। -

मजहब से क्यों खेलता, है तू मित्र अभाग ।
कागज के घर में रहे, और जलाए आग ।।[7]

इस प्रकार है -

सारे ईश्वर मर गये, अब मैंहूँ भगवान ।
पूजा-घर के बुर्ज से धन करता ऐलान ।।[8]

कवि समीप धार्मिक आस्थाओं की विखण्डित छवि पर चिंता तो है और बताते हैं कि जो दंगे-फसाद धर्म के नाम पर हो रहे हैं वे समाज के लिए आत्म हनता सिद्ध होंगे । कागज के घर में बैठ कर आग का खेल करना अर्थात धार्मिक उन्माद में आकर अपनी हित साधना करना मानव समाज के लिए भयावह स्थितियाँ पैदा करना है।

दूसरे दोहे में कवि ने कहा है कि मेरे पास यदि धन है तो वह धन ही भगवान है। सच्चा भगवान तो मर गया है इस तरह पूँजी पतियों एवं धनाधीशो के वैभवी उन्माद को कवि ने विसंगत और अस्वीकार करते हुए उसे समाज के लिए एक अभिशाप माना है। भगवान के प्रति आस्था मन के अनन्य विश्वास पर निर्भर है या फिर भावनात्मक निष्ठाओं पर किन्तु जब मन के विश्वास और निष्ठाएं ही खण्डित हो जायेगी। तब फिर इन धार्मिक मान्यताओं को कैसे सहेजा जा सकेगा। वे इस संदर्भ में कहते हैं -

मन से मंदिर की गली पहले थी निर्बाध।
अब तो हर इक मोड़ पर, बैठा है अपराध ।।[9]

इसी तरह वे अन्य दोहे में कहते हैं -

दर्शन महँगे हो गए, तेरे भी भगवान।
कहाँ चढाऊँ आस्था, मंदिर बना दुकान ।।[10]

धार्मिक मूल्यों के विघटन के संदर्भ में आधुनिक दोहाकार समाज की वास्तविकता पर जोर दिये हुए हैं। आज मनुष्य सिर्फ अपना फायदा और अपनी झोली भरने के लिए हर कार्य कर रहा है। यदि आज मंदिर का निर्माण भी कोई करवाता है तो उसके पीछे स्वयं का फायदा पहले सोचता है ऐसे में धर्म, आस्था, विश्वास आदि का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है। आज मंदिर के या मूर्ति के दर्शन करने के भी दाम चुकाने पडते हैं अर्थात् मंदिर ने भी सबके लिए सुलभ न होकर एक दुकान का स्वरुप ले लिया है ऐसे में आज सामान्य मानव की आस्था डगमगाने लगी है।

धर्म के नाम पर चारों ओर लूट चल रही है। पूजा एवं नैबेध की सारी सामग्री भी महंगी

हो गई है। ऐसे में लोग देखा देखी में फँसकर भगवान को बडे-बडे भोग लगा रहे हैं। कीमती मेवे चढाकर भगवान को शीघ्र ही खुश करना चाहते हैं। इससे तो यही प्रश्न उठता है कि क्या आज भगवान सिर्फ बडी-बडी भेंट सौगातें चढानेवालों पर ही प्रसन्न होता है? यह तो मात्र एक प्रश्न बनकर रह गया है। परन्तु एक बात अटल सत्य है कि भारतीय समाज में धर्म एवं अध्यात्म पर परम्परा से ही आस्था और विश्वास को बनाये रखने पर अधिक बल दिया गया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में आदि काल से लेकर निरंतर धर्म पर आस्था बनाये रखने की बात कईबार दोहराई गई है। इसी परिप्रेक्ष्य में आधुनिक दोहाकार पुनः उसी आत्म-समर्पण एवं आस्था की बात करता है -

धूप, दीप, नैवेद्य, फल, पत्र पुष्प बेकार।
आत्म-समर्पण के सिवा उसे न कुछ स्वीकार ।।(11)

भारतीय समाज में अनेक धर्म एवं सम्प्रदाय के लोग हैं जो अध्यात्म के अलग-अलग मार्गो पर चल रहे हैं। सभी अपने मार्ग को श्रेष्ठ बताते हुए उस पर अपनी आस्था टिकाए हुए हैं। जब से भारतीय संस्कृति का निर्माण हुआ है। तभी से ही धर्म और अध्यात्म हमेशा मानव समाज के लिए विशेष महत्वपूर्ण रहा है। इनमें अपनी अपनी मान्यताएं एवं अपनी-अपनी ही धर्म पर प्रयाण करने की राहें हैं। पर मंजिल एक ही है। इस परम् सत्ता की अनुभूति और उसकी कृपा फिर भी उसे एक ही मंजिल तक पहुंचने के लिए अनेक मार्ग है, साहित्य के भक्तिकाल में मुख्य रुप से ऐसे अनेक मार्गो का उल्लेख किया गया है जिस पर विभिन्न सम्प्रदाय अपनी आस्था को स्थापित करते हैं। समाज में उपस्थित होने वाले अनेक आडम्बर धर्म के विषय में खीच-तान, भेद-भाव आदि ऐसे अनेक विषय रहे हैं जिन पर कबीर जैसे मध्यकालीन कवि ने भी बहुत कुछ कहा है और आज आधुनिक परिवेश में भी विश्व प्रकाश दीक्षित ''बटुक'' परम्परित वर्ण्य विषय को अपने दोहा में कहते हैं कि -

एक करे आराधना, पढता एक नमाज़।
लक्ष्य एक पर मुख्तलिफ, दोनों के अंदाज़ ।।(12)

आज भी 'बटुक' जैसे क्रांतिकारी कवि-दोहाकार हैं जो परम्परा से चले आ रहे। भेदभाव जैसे घिनौने रूप को पुनः-पुनः समाज के सामने रखते हैं । मगर मानव जीवन बडी तेज गति से चलता चला जा रहा है। उसके पास अधिक सोचने या देखने का अब समय नहीं रहा है। मनुष्य जीवन के कुछ ही दिनों में सबकुछ प्राप्त करने की लालसा में निरन्तर दुःख भोग रहा है। आज मानव में परोपकार या सेवा का भाव समाप्त हो चुका है। वह सदैव अपना ध्यान करके ही आगे कदम बढाता है। स्वार्थ की भावना से लिप्त आज इंसान अपना असली रुप खो चुका है। और

निरन्तर कुछ पाने की आस लिए दर-व-दर ठोकरें खा रहा है। इसी स्वार्थी भाव से ग्रसित मानव हमेशा ही दुःख को भोगता आया है। जिसका स्वीकार 'बटुक' के निम्न दोहे में स्पष्ट झलकता दिखाई पडता है -

ध्यान रहा अपना सदा रहा न तेरा ध्यान।[13]
भँवर-गुहा में तू छिपा, मै भटका बीरान ॥

सामयिक साहित्य में अध्यात्म के मार्ग से भटकाव निरंतर देखा जा सकता है। मानव की प्रकृति ही भूल करने की रही है। धर्म क्या है? अध्यात्म क्या है? यह सब किस लिए है। किसके लिए है। धर्म एवं भक्ति के मार्ग की अंतिम सीमा क्या है? आदि प्रश्नों को जाने बिना ही मानव उस राह पर चलना शुरु हो जाता है जिस पर से उसके भटक जाने का निरंतर भय रहता है, सचे ज्ञान के अभाव में भूल होना स्वभाविक है। अतः युगो-युगों से मानव यह भूल दोहराता आया है। परम्परा से चले आ रहे ऐसे भावात्मक अन्तर्द्वन्द को आधुनिक दोहाकार व्यक्त करता है-

पंथ-पता जाँचा नही, बाँचा रह-रह पत्र।
द्वार आपका भूल कर, जा पहुंचा अन्यत्र ॥[14]

हिन्दी साहित्य में धर्म और अध्यात्म के नाम पर वर्षो से तबाही की आँधियाँ चलतीं रही हैं जिसमें पूरा का पूरा मानव समाज उजड गया है कभी किसी राजा का धर्म के प्रति बलात्कारी रुप तो कभी अपने मान संमान के ए धर्म से छेड़छाड़ अर्थात् धर्म एवं अध्यात्म को लेकर खोखली आस्था हमेशा प्रताडित हुई है। खण्डितहुई है। साथ ही राजनीतिक परिसितियों के बदलते अनेक परिवर्तन होने संभव हैं जिनमें धर्म कैसे वंचित रह सकत है। कभी-कभी किसी निश्चित धर्म पर आस्थावान ने रहना बडा ही मुश्किल हो जाता है भारतीय समाज में धार्मिक निष्ठा को बनाये रखने की स्थिति बड़ी ही दयनीय रही है। कभी धर्म परिवर्तन हुए हैं तो कभी धर्म के ही नाम पर न जाने कितने नर संहार हो चुके हैं, ऐसे में साहित्यकार एवं कवि की दृष्टि बीच का रास्ता अपनाती है और बताती है । निरंतर कवि अपने धर्म का निर्वाह करके समाज को सचेत करता रहा है। आज भी सामयिक दोहाकार साफ-साफ सीधे ही बिन ाकिसी लेप लपेट के अपनी बात सहज की कहता है -

मस्जिद ढाई ईंट की, है मंदिर दो हाथ।
इनकी रक्षा के लिए, जग को करो अनाथ॥[15]

हिन्दी साहित्य सृजन निरन्तर मानव जीवन को ही केन्द्र में रखकर हुआ है। उसके हाव

भाव एवं बदलते विषय परिवेश की झलक प्रत्येक काल के साहित्य में दृष्टिगोचर होती है। कवि अपने अध्ययन और अनुभव से निर्मित अपनी अवधारणाओं को स्वयं का आदर्श मानता है। साथ ही वह समाज से यह अपेक्षा भी करता है कि उसका तम सामयिक समाज उसके आदर्शो के अनुरुप चलने का यत्न भी करे एवं कवि के द्वारा निदर्शित दिशाएं उसकी चेतना होती है। स्वयं जयशंकर प्रसाद इस चेतना को मानव के विकास में महत्वपूर्ण मानते हैं -

चेतना का सुन्दर इतिहास,
अखिल मानव भावों का सत्य ।
विश्व के हृदय पटल पर दिव्य
अक्षरों से अंकित हो नित्य ।।(16)

मानवीय भावों के चेतनात्मक दिव्य सत्य को विश्व के हृदय-पटल पर अंकित करने के लिए प्रत्येक देश काल में सच्चे कवि सतत सचेष्ट रहते हैं। ऐसे कवि कभी पौराणिक उदाहरणों के द्वारा अथवा अन्य कह-कहे कहावतों को केन्द्र में रखर अपनी बात की पुष्टि करते हैं। जिस प्रकार ''मन चंगा तौ कठौती में गंगा'' वाली कहावत प्रसिद्ध हैं। अर्थात मन के भावों से ही समाज में व्यक्ति का उत्थान व उसका पतन सम्बंध रखता है। इसी मन की भावना पर मध्यकाल के कवि गोस्वामी तुलसीदास ने भी 'रामचरित मानस' में कहा है -

जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरत देखी तिय तैसी।

कहने का तात्पर्य है कि मन के भावों से ही देखने की दृष्टि का सम्बंध हैं। सदियों से चले आ रहे अध्यात्म से जुडे ऐसे विषयों को हर युग, देशकाल में स्थान प्राप्त हुआ है। आज के सामयिक परिवेश में भी आधुनिक कवि दोहाकार महेश दिवाकर ने इसी हृदय की भावना पर अपनी आस्था व्यक्त की है जिसमें पौराणिक उदाहरण देते हुए कहते हैं कि -

अगर भावना पाक हो बन जाते सब काम।
शबरी के घर देख लो, खुद ही पहुंचे राम ।।(17)

ईश्वर ने पैदा किया सबको एक समान।
जिसकी जैसी भावना, बन जाता इंसान।।(18)

आधुनिक परिवेश में आज बदलती हुई मानसिकता के कारण पौराणिक मूल्यों का निरंतर ह्रास हुआ है। इसी भारतीय संस्कृति में जहाँ सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र का नाम अमर है। वहीं दूसरी ओर वचन पालन की रीति भी भारतीय संस्कृति को सम्मान दिलाती रही है। मगर आज दौर ने पलटी खाई है। अब न राजा हरिश्चंद्र रहे, न कर्ण, न जनक, क्योंकि बदलता युग ऐसी

आत्माओं को जीवित नहीं रहने देता आज व्यक्ति बड़ी मुश्किल से अपने आप को ही सम्भाल पाता है और की तो वह बात ही क्या सोचे? वचन पालन की रीति, तथा सत्य की जीत आज व्यवहारिक नहीं है। व्यक्ति अपने धर्म एवं आस्था को बडी ही कठिनाई से बचा रहा है। अपनी सुख संपत्ति का त्याग आज के युग में बडा ही दुरुह है। साहित्य में वचन प्रियता एवं सत्यता को हमेशा सम्मान मिला है। मगर यही विषय आज प्रश्न चिन्ह में बदल गया है। इसी परिच्छेद में ब्रजकिशोर वर्मा 'शैद्री' जी के निम्न दोहों को देखा जा सकता है। जहाँ पर बदलती हुए रीति स्पष्ट द्रष्टि गोचित होती है -

प्राण जायें पर वचन नहिं, सदा सत्य की जीत।
तुलसी अब निभती नहीं, रघुकुल की यह रीति।।[(19)]

भक्त समझते थे जिन्हें प्रिय अपना श्री राम।
उन्हीं विभीषण को मिला, घर भेदी का नाम।।[(20)]

वर्माजी के उपर्युक्त दोहे धर्म के साथ-साथ आधुनिक मानव की मानसिकता को भी व्यक्त करते हैं। इन दोहों में धर्म और सत्य के पथगामी को घर भेदी का नाम देकर सम्बोधित किया गया है जिसमें आज की सामाजिक सोच एवं मान्यता को अभिव्यक्ति मिली है।

धर्म एवं अध्यात्म की आस्था के पर्यायों को आधुनिक दोहा में स्पष्ट देखा जा सकता है। जहाँ श्रद्धा और विश्वास की डोर बहुत ही कमजोर हो गई है। आज आधुनिक परिवेश में व्यक्ति ने सिर्फ लेना ही सीखा है देना नहीं । ऐसे में जब सभी लेने की ही जुगत में रहेंगे तो देगा कौन। यही प्रश्न समाज में दुःखों का कारण बना हुआ है क्योंकि समर्पण-त्याग के बिना हृदय में सच्ची प्रीति का उद्भव नहीं हो सकता । परिणाम स्वरुप धर्म और आस्था भी स्थिर नहीं हो सकती। इस प्रकार धर्म और अध्यात्मक से जुड़े विषयों को लेकर साहित्यकार कवि अपनी लेखिनी की छटा सदियों से दिखाते चले आ रहे हैं। समय बदल गया समाज में भी परिवर्तन आया है। परन्तु वर्ण्य विषयों की जो श्रृंखला भूतकालीन काव्य में रही है। सहज रुप से वही विषय आज के आधुनिक दोहा साहित्य में भी प्राप्त होते हैं, जिसमें वर्ण्य विषय मानव जीवन के इर्द-गिर्द ही घूमते हैं।

राजनीति

आधुनिक साहित्य मानव जीवन से जुडा हुआ साहित्य है। जिसमें समाज एवं मानवजीवन की उथल पुथल को लेकर जितने दोहे सामयिक युग में लिखे गये। उतने धर्म या अध्यात्म पर नहीं। आज के दोहों में सर्वत्र मानव त्रासदी ही नजर आती है। हाँ कहीं-कहीं पर रचनाकारों ने मधुमास को भी वर्णित किया है।

आधुनिक परिवेश में राजनीतिक परिस्थिति अत्यंत दयनीय है। जिसमें साधारण आदमी निरंतर पिस रहा है। मँहगाई, चोरी, अपनी-अपनी खेंचम खेंच, आपाधापी, जाकी लाठी ताकी भैंस, वाली कहावत सर्वत्र दिखाई देती है। बिगडती राजनीतिक परिस्थितियों के कारण लोकतंत्र मे हताशा एवं खीज के स्वर स्पष्ट ही सुनाई देते हैं। कहने को तो इंसान इस सृष्टि में अमूल्य हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि उसकी कोई कीमत (मूल्य) ही नहीं है। बल्कि यह है कि इंसान का कोई मोल चुका ही नहीं सकता। परन्तु समय की ऐसी त्रासदी होती है कि जहाँ अन्य बाज़ारु वस्तुओं के मुकाबले इंसान की कीमत सस्ती लगती हैं। इसी विषय की गम्भीर विभीषिका को व्यक्त करते विश्व प्रकाश दीक्षित प्रस्तुत दोहे में कहते हैं -

सभी वस्तु महँगी हुई, सस्ता है इनसान।
किसी मूल्य पर क्रय करो, जब चाहो लो प्राण।।(21)

राजनीति के दल-दल में फँसकर इंसान अपनी इंसानियत को खो देता है। फिर आगे उसे कुर्सी और सत्ता के सिवाय अन्य कुछ भी दिखायी नहीं देता, सारे रिस्ते-नाते एवं मानवीय व्यवहार का ह्रास हो जाता है। देश का इतिहास गवाह है कि राजनीति के घिनौने खेल में न जाने कितने ही मानव मूल्यों को बली चढा दिया गया है। रावण हर युग में पैदा हुआ है और अपनी सत्ता के बल पर अनर्थ एवं अनीति के मार्ग पर ही चल रहा है। राजनीति का विषय इतिहास प्रसिद्ध है। समाज में कभी यह खेल खुलकर खेला गया है तो कभी अनेक दबे हुए षड्यंत्रो के द्वारा जिसमें हर काल खण्ड में मानवता को ही ठेस लगी है।

आज के परिवेश में भले ही राजनीति के खेल में पर्याय बदल गये हैं। लेकिन राजनीति आज भी दल-दल बना हुआ है। जिसमें एकबार फँसने के बाद निकलना मुश्किल होता है। आधुनिक राजनीति का ऊपरी दिखाव (बाहरी दिखाव) तो बडा ही शान्त नज़र आता है। परन्तु इस राम रुपी शान्ति के पीछे रावण का व्यवहार एवं व्यक्तित्व भी छुपा रहता है। आधुनिक दोहा छंद के सशक्त हस्ताक्षर कृष्णेश्वर डींगर जी राजनीति के इसी दोहरे स्वरुप की बात करते हुए अपने शब्दों के दर्पण से राजनीति का असली रुप सामने रखते हुए कहते हैं -

राजनीति करती रही, भीषण नर संहार।
पहन मुखौटा शान्ति का, रावण-सा व्यवहार।।(22)

भारतीय समाज में जब से संविधान ने सभी को कहने सुनने के अधिकार दिये हैं तब से इसके उपयोग के साथ-साथ दुरुपयोग का भी सिलसिला निरंतर चलता रहा है जिसके कारण आज अनेक प्रकार की असंगतियाँ देखी जा सकती हैं। आज योग्यता से अधिक कई अन्य चीज़ों को

अधिक देखा जाता है। आज राजनीति के बदलते परिवेश में ऐसे लोगों के हाथ सत्ता लग गई है जो जनता (प्रजातंत्र) की आवाज सुनही नहीं पाते । राजनीति में अंधे सत्ताधीस को स्वयं अपना ही हित दिखाई देता है। जब तक सत्ता की कुर्सी नहीं मिल जाती तब तक आराम नहीं मिलता। आगे डींगर जी इसी परिपेक्ष्य में कहते हैं कि कुर्सी की खातिर देश, धर्म नीलाम करनेवाले आज के नेता भगवान तक को बेच रहे हैं। आँखों के सामने सत्ता का ऐसा पर्दा पडा हुआ है कि वे देखते हुए भी कुछ नहीं देख पा रहे हैं -

बहरों को कुर्सी मिली, गूंगों को अधिकार।
अंधों को दर्पण दिये, लूलों को हथियार।।[(23)]

कुर्सी की खातिर करें देश धर्म नीलाम ।
वोटों की बोली लगी, क्षेत्र अयोध्याधाम।।[(24)]

साहित्य के प्रत्येक देश काल में राजनीति का प्रभाव हमेशा पडता है, जिसमें देश को बडी ही दुःखद विभीषिकाओं से गुजरना पडता है। आधुनिक परिपेच्छ की राजनीति का वर्ण्य विषय कोई नया नहीं है। अंग्रेजों ने भी भारत में अपनी राजनीति फैलाकर समस्त भारतीय समाज को अपनी गुलामी की जंजीर में जकड दिया था। अंग्रेजों से पूर्व मुगलों ने भी इस भारतीय समाज पर अपनी सत्ता को स्थापित किया था। देश का कोई न कोई भाग राजनीति के सख्त सिकंजे में हमेशा पकडा हुआ रहा है। आज भी देश के बिहार जैसे राज्य में राजनीति के क्रूर षडयंत्रों से लोकतंत्र को दबाया जाता है। जिसमें सत्ताधीस के सामने सभी नतमस्तक दिखाई देते हैं। आधुनिक कविता के सुमधुर गीतकार एवं दोहाकार, महेश्वर तिवारी देश में परिवर्तन के नाम पर होनेवाले अनेक उतार चढाव को सामने रखते हैं। देश का प्रतिबिम्ब दिखाते हुए कहते हैं कि सब घूम फिर कर वहीं पर आ जाते हैं सत्ता के बदलने से (पार्टी की सत्ता) क्या कुछ नया होगा? देश समाज या राजनीति में कोई बदलाव आयेगा यह सोचना सब व्यर्थ सिद्ध होता है अपने दोहे में वे कहते हैं -

परिवर्तन के नाम पर, बदली क्या सरकार ।
रफ्ता रफ्ता हो रहा, पूरा देश बिहार।।[(25)]

आधुनिक दोहा साहित्य में विषय को परम्परित ढंग से न कहते हुए अलग ही ढंग से कहा गया है। दोहा छंद में वर्णित कथ्य अपने आप में विशेषता लिए हुए होता है। व्यंग्य के तीखे स्वर और बडी ही सरलता से कथ्य पर चोट कर देना। दोहे का स्वभाव ही है। इसलिए राजनीतिक विषय पर भी आधुनिक दोहाकारों ने परम्परा से हटकर प्रस्तुति की है। अनेक मुहावरे, कहावतें और लोकोक्तियों का प्रयोग करके वर्ण्य विषय को इन दोहों में प्रस्तुति मिलती है। आज के सामयिक

दोहों में पुराने राजनीतिक परिवेश कहीं भी नज़र नहीं आते। जिनमें मात्र राजा-प्रजा, देश व्यवस्था या राजनीति के अन्य तेवर देखने को मिलते हों। जहाँ मंत्री चापलूसी करते हो और प्रजा लोकतंत्र गुलाम बने। चाहकर भी कुछ न कर पाते हों क्योंकि वहाँ राजा का पुत्र ही राजा बनता था। परन्तु आज राजनीति में अनेक बदलाव आये हैं। नये कानूनों के तहद् आज स्वयं जनता को अपना राजा चुनने का अधिकार प्राप्त है। मगर फिर भी इस राजनीति में होनेवाले परिवर्तन से कोई फर्क नहीं पडता, सत्ता हाथ लगते हीं सबके सब एक जैसे ही हो जाते हैं । फिर जनता के पास सिर पीटने के अलावा कोई रास्ता नहीं रहता। आज इस राजनीति को सियासी खेल मे किसी पर विश्वास करना बडा ही मुश्किल हो गया है। नित नये रुप रंग में नेता रोज जन्म लेते हैं। दोहाकार हरे राम 'समीप' अविस्वास के मारे और सियासत के गन्दे खेल से ग्रसित लोकतंत्र के टूटे भावों को व्यक्त करते हैं -

सिर पीटे जनता यहाँ, देख सियासी-राज।
किन लोगों को सौंपदी, बाग ड़ोर फिर आज॥[26]

और कल तक जो दुनियाँ को बदलने की बात करता था और सुधारवादी अभियान चलाकर सबको समान हक और न्याय दिलाने की जो बात करता था मगर वह भी धन की लालच में फँसकर अपने सारे वादे और कर्तव्य भूल कर सुख भोग करने में लिप्त हो गया। समीप जी के निम्न दोहे में ऐसा ही दृश्य साकार हुआ है -

कर दूँगा इक रोज मैं दुनियाँ को तब्दील।
कल ये कहता था वही, अब वैभव की झील॥[27]

नेताओं में आज जहाँ भी देश भक्ति देखने को मिलती है। वह मात्र दिखावे के लिए है, सत्ता प्राप्त करने के लिए है। इस राजनीतिक परिवेश को केन्द्र में रखकर अनेक फीचर फिल्में भी बन चुकी है। क्योंकि समाज में नेता और उनकी राजनीति और सत्ता पाने की लालसा, ऐसा भयंकर अजगर है। जो बैठे बैठे ही सारे लोक तंत्र को निगल जाने की ताकत रखता है। अतः देश को सही राह दिखाने में साहित्य के साथ-साथ अन्य माध्यम् भी कार्यशील रहे है। संसार का त्याग करने वाले साधु संत भी आज राजनीति के कीचड़ में सने हुए देखे जा सकते हैं। जो धर्म के नाम पर राजनीति फैलाकर अपना उल्लू सीधा करने में ही महानता का अनुभव करते हैं। आज कुर्सी की खातिर देश भक्ति, धर्म भक्ति, जाति भक्ति, कोमवाद एक अस्त्र की तरह प्रयोग किये जाते हैं -

देशभक्ति बनने लगी राजनीति का अस्त्र।
और सियासी हो चला, आज गेरुआ वस्त्र।।(28)

राजनेता आज देश के लिए चिंतित तो दिखाई देते हैं। मगर तभी जब उनके पेट भरे होते हैं। सब सुख सुविधा उनके पास मौजूद होती है। समीप जी कहते हैं कि इसी सुख सुविधा में मस्त होकर वे देश के भविष्य पर सोच विचार करते हैं और स्वयं कुछ न करके यह भाग्य पर इंतजार करते हैं कि ऊँट किस करवट बैठेगा इसी राजनीति के विषय को समीप जी बडे ही तीखे व्यंग्य से अपने निम्न दोहे में व्यक्त करते हैं -

क्या होगा इस देश का किस करवट हो ऊँट।
बहस रात-भर ये चली, लगा-लगाकर घूंट।।(29)

जब सभी अपना अपना फायदा ताकते हों तो परिणाम पर पहुंच पाना बडा ही मुश्किल होता है। अतः लगातार बहस का चलते रहना स्वभाविक है। ऊँट को अपनी अपनी करवट बैठाने में लगे नेता प्रजातंत्र की खाल उधेडकर रख देते हैं। जिससे असुविधा एवं असंतुलन निश्चय ही पैदा हो जाता है। आधुनिक दोहा छंद के वरिष्ठ हस्ताक्षर विश्वप्रकाश दीक्षित प्रजातंत्र का शुद्धतम रुप अपने दोहे के माध्यम से दिखाते हैं। जिसमें कानून व्यवस्था को अपने जेब में रखे हुए नेता मनमानी कर रहे हैं। उन पर ऊंगली उठाने की किसी में हिम्मत नहीं है। परिणाम स्वरुप पंडित को भीख मांगनी पडती है और अपराधी खुलेआम राजसुख का भोग करते दृष्टि गोचित होते हैं -

प्रजातंत्र का शुद्धतम रुप रहा है दीख।
दंडित भोगे राज-सुख पंडित मांगे भीख।।(30)

आज के आधुनिक कवि दोहाकार किसी के राजाश्रित नहीं है और न ही उन्हे अपने आश्रयदाताओं से कोई लालच है। आज स्वयं साहित्यकार उदार भाव से दान देते हैं लेते नहीं। ऐसे में अपने ऊपर किसी की धौंस नही रहती न ही सच्चे साहित्यकार पर किसी राजनीतिक पार्टी का कोई दबाव होता है। अतः उनकी लेखिनी तेज एवं धारदार हो जाती है और वास्तविकता को उधेड़कर सामने रख देती हैं। जब ऐसे साहित्यकारों को दोहा छंद का साथ मिल जाता है तो बात कहने में देर भी नहीं लगती और अपनी बात बडी ही प्रखरता के साथ सीधे ही प्रकट कर दी जाती है इसी लिए दोहा छंद लघुता में प्रभुता के गुणों के कारण आज साहित्य जगत में दोहा कवियों की अभिव्यक्ति का सबसे प्रिय माध्यम बन गया है। अनेकों दोहाकार अपने भावों को तीव्रता के साथ दोहा के दो टूक शब्दों में कह देते हैं। कैलाश गौतम ऐसे ही दोहाकार हैं जो राजनीति के गुणों को बताते हैं। आज यदि कहीं पर भी सफल होना है तो धोखा, झूठ, फरेब जैसे गुणों के

बिना काम नहीं चलता। आज सच का बजूद समाप्त होता दिखाई दे रहा है। झूठों की ही किस्मत रंग ला रही है। सारी सुख सुविधाओं के उपभोग के साधन इन्ही झूठे, फरेबीयों के पास हैं जिसके परिपेच्छ में गौतम जी का निम्न दोहा भावों की पुष्टि करता है -

झूठों की किस्मत खुली, चमका कारोबार।
हर झूठे के पास है, कुर्सी, कोठी, कार।।[31]

दोहाकार ने आगे कहा है कि राजनीति के खेल खेलने और मनमानी करने में तब और भी मजा आता है। जब अपना पलड़ा भारी हो अर्थात सारी व्यवस्थाएं अपनी जेब में पड़ी हों। कहीं किसी का भय न हो। यहाँ दोहाकार कोई कहावत या व्यंग्य नही करता बल्कि वास्तविकता को उसके यर्थाथ रुप में व्यक्त करता है। जब बाबू एम.पी. बन जायें और भाई थानेदार तब पूरा परिवार मनमानी मौजमस्ती और मनमानी व्यापार तो करता ही है। आज की राजनीतिक भ्रष्ट व्यवस्था के कारण दोहाकार को यह कहना ही पडता है कि -

बाबू एम.पी. हो गये, भाई थानेदार।
करते जमकर तस्करी, गोपी, राम दुलार।।[32]
कट्टर पंथी हैं मगर, समय समय की बात।
पंडित जी की पाँत में, मियाँ परसते भात।।[33]

इस दोहों में दोहाकार ने बिगडी राजनीति, भ्रष्ट व्यवस्था के उपरान्त भी काफी कुछ कहा है। साथ ही अपने कहन सोच विचार भी अभिव्यक्त किये है। कवि चिंतित है कि ब देश को सही मार्ग कौन प्रशस्ति करेगा। ध्रुवेन्द्र भदौरिया जो पेशे से तो चिकित्सक हैं और आज की बीमार सड़ी हुई राजनीति पर दुःखी भी हैं। उपचार शब्द का प्रयोग कर उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति निम्न दोहे में प्रस्तुत की है। जहाँ स्वास्थ का दूर दूर तक निशान ही नही दिखाई देता क्यों कि -

कैसे होगा देश का, अब बोलो उद्धार।
अन्धेपन पन का कर रहे, अंधे ही उपचार।।[34]

वहीं दूसरी ओर आधुनिक दोहाकार दिनेश रस्तोगी कहते हैं कि राजनीति के दल-दल में उतरकर नेताओं के बडे-बडे रोग सहज ही ठीक हो जाते हैं। जो विश्वामित्र की तरह तपस्या करते रहे और राजनीति से अपने को बचाए रखा। परन्तु जब राजनीति का मेनका रुपी सौन्दर्य देखा तो सब छोडकर उसी के पीछे पड़ गये। सत्ता की कुर्सी पर आरुढ़ होने के बाद भ्रष्टाचार में लिप्त होकर रंक भी सम्राट बन जाते हैं और अपनी सातों पीढ़ियों के लिए सुख सुविधा जुटा देते हैं -

योगी भोगी हो गये, बौने हुए विराट।
कुर्सी की जादूगरी, रंक हुए सम्राट।।(35)

इन सामयिक दोहों में राजनीति का विषय नेता और जनता के इर्द गिर्द ही घूमता है जहाँ नेताओं को गिरगिट जैसे अनेकों रंग बदलते देखा जाता हैं। नेताओं की अपनी कथनी-करनी के कारण आज लोक तंत्र को बड़े-बड़े आघात लग रहे हैं। सत्ता के मद को पाने के लिए साँझा सरकारे चलाई जा रहीं हैं। जिनका परिणाम आपात और अव्यवस्था ही निकलता है। दोहाकार शिवशरण दुबे का ताजगी लिए हुए निम्न दोहा जो लोकतंत्र की ही बात करता है -

लोक तंत्र को लग रहे, नये नये आघात।
साँझा सरकारें गिरीं, फिर सम्मुख आपात।।(36)

साहित्य के इतिहास में चाहे कोई भी समयकाल रहा हो। राजनीति का प्रभाव प्रत्येक काल के साहित्य पर देखा जा सकता है जो राजनेताओं के जितना करीब रहा है। वह अपने को उतना ही सुखी एवं खुश पाता है। देश की सारी व्यवस्था किसी एक के बनाये नहीं बनती जब रक्षक ही भक्षक हो जाय तो परिस्थिति बदलते देर नही लगती। दोहाकार का स्पष्ट निर्देश उसी ओर है जहाँ कानून व्यवस्था बनाने वाला ही उसे तोड़ता है। दोहाकार विष्णु विराट का दोहा कुछ ऐसे ही भावों को लपेटे हुए प्रस्तुत हुआ है। जहां राजनीति में लिप्त भ्रष्टाचार दो टूक शब्दों में प्रस्तुत हो जाता है-

पकरि पुलस ने करि दियौ, गिर्रो गुण्डा बन्द।
ऐमैले के कौल नें, कीन्ही कृपा तुरन्त।।(37)

समग्रतः आधुनिक राजनीति के परिवेश में आधुनिक दोहाकार अपनी अपनी बाँसुरी और अपने-अपने रागवाली बात कहते हैं। जहाँ कोई किसी के लिए एक पल नहीं ठहरता। आधुनिक राजनीतिक परिवेश के इन दोहों में युगीन समस्याओं का वस्तु चित्र उकेरा गया है। जन जीवन की बदहाली को शब्दायित किया गया है। भ्रष्ट राजनीति से लिप्त युग पीडा को स्वर प्रदान किये गये हैं। साथ ही राजनीति और राजनेताओं के छद्म रुप को बेपर्दा किया गया है। कहीं पूंजी द्वारा श्रम के शोषण के प्रति उपालम्भ है तो कहीं शक्ति एवं सत्ता का दुरुपयोग चित्रित हुआ है। वर्तमान राजनीतिक कुकृत्यों की चर्चा खुलकर की गई हैं। आज का राजनेता स्वयं अपराध करता है, अपराधियों को शरण भी देता है और दोषी रहते हुए अपने पद-प्रभाव के बल पर निर्दोष बना रहता है। वर्तमान राजनीति के परिणामों पर तीखा व्यंग्य करते हुए नावक के तीर दोहा संग्रह के दोहाकार अनन्तराम मिश्र 'अनंत' लिखते हैं -

कैसे-कैसे हो गये, ऐसे-वैसे लोग।
ऐसे-वैसे हो गये, कैसे-कैसे लोग।।[38]

जनता की भूखी थालियों में झूँठे आश्वासनों का व्यंजन परोसने वाले ये नेता देश की संसद में, विधान-सभाओं में गाली-गालौज, मारपीट तक करते हुए नज़र आते हैं। लात जूता चलाते हैं जनता के धन से अपनी तिजोरी भरते हैं और बार-बार जनता को मूर्ख बनाते हैं। ऐसे भ्रष्ट नेताओं के विरुद्ध, ऐसे कुशासन के विरुद्ध आधुनिक दोहाकार कवि जनता को सजग करता है और संगठित शक्ति से गर्जना करने के लिए प्रेरित भी करता है तथा अब अधिक न सहकर उठ खड़े होने के लिए ललकारता है -

बोल गरज कर तब कहीं, चेतेगा मक्कार।
तेल कान में डाल कर, सोया है दरबार।।[39]

समाज

परिवर्तित हुए प्रत्येक समय में मानव हृदय की भावना एवं उसके विचारों में पर्याप्त अन्तर आता रहा है। मानवीय संवेदनाओं में लगातार परिवर्तन से उसकी सभ्यता, मान्यताएं एवं व्यवहार में विविधता देखी जा सकती हैं। साहित्य प्रत्येक काल में समाज के साथ जुड़ा रहा है। दोहा में शिल्प के आकर्षण के कारण कवियों का रुझान दोहे की ओर अधिक रहा है। समाज में फैले आडम्बर, छुआ छूत, भेदभाव जैसी वृत्तियों को हटाने के लिए कबीर आदि अनेक कवियों का इस छन्द पर अधिक मोह रहा है। समाज में फैली कुरीतियों का अधिकाधिक वर्णन इसी दोहा के दो टूक शब्दों के द्वारा किया गया है। सामाजिक समस्याएं किसी भी युग में शांत नही रहीं। अतः कवियों के भावों में व्यंग्य, ओज एवं क्रान्ति की भावना प्रमुखतः इसी छन्द में व्यक्त हुई है।

आधुनिक दोहा छन्द में सामाजिक वर्ण्य विषय कोई नया विषय नहीं है बल्कि जब से साहित्य का रुप सामने आया है। तब से साहित्य में इस विषय पर रचनाएं हो रहीं हैं और आज भी कवि एवं दोहाकार अपने इस दायित्व को भली भांति अंजाम दे रहे हैं। आधुनिक मानव समाज पढा लिखा, घूमा फिरा हैं विकास की नई-नई ऊँचाईयों को नापता जा रहा है। परन्तु उसने इस विकास की राह में बढते हुए बहुत कुछ पीछे छोड दिया है। विज्ञान समाज को अनेक भौतिक सुख सुविधाएं तो दे सकता है परन्तु सामाजिक व्यवहार से प्राप्त सुख शांति नही। अतः भौतिकता की चका चौंध में फँसा समाज अपने मूल चरित्र को खोता जा रहा है । कारण बस आज समाज के नित्य गिरते हुए चरित्र को देखकर कवि दुःखी है। यही वह देश है जिसके चरित्रोत्थान की चर्चा करते हुए महात्मा तुलसीदास जी लिखते हैं -

शिवि दधीचि अज जो कछु भाखा। तन धन तजे, वचन प्रन राखा।

परन्तु आज समाज में मन वाणी और कार्य की एकता भंग हो चुकी है। आज का मनुष्य कहता कुछ और है करता कुछ है। दुरात्माओं का लक्षण बताते हुए पूर्वाचार्यो ने कहा है :-

''मनस्यन्यद् वचस्यन्यद् कर्मण्यन्द दुरात्मनाम्''

आज समाज में ऐसे लोगों की ही भरमार है। दोहाकार कवि अनन्तराम मिश्र 'अनंत' के अनुसार आज का मनुष्य दश मुख वाला हो गया है। अर्थात् एक ही मुख से दश प्रकार की बातें करता है। फूटे हुए दर्पण में जितने टुकडे होते हैं, उनमें उतने ही चेहरे भी दिखाई देते हैं । कवि को यह शंका है कि युग के दर्पण में शायद दरारें पड़ गयी हैं -

मुख दशमुख दिखने लगे भय का हुआ प्रसार।
युग-दर्पण में आ गयी, शायद कहीं दरार।।(40)

इन अनेक रुपों के बीच फँसकर मानव का वास्तविक रुप खो चुका है। आधुनिक दोहाकारों ने समाज में परिवार, रिस्ते नाते एवं आपसी सम्बंधों पर जितना लिखा है। उतना सम्भवतः पूर्ववर्ती युग में नहीं लिखा गया क्योंकि आज जो रिस्तों के परिवेश बदले हैं। उतने पहले कभी नहीं बदले थे। रिश्तों में आयी हुई कटुता को लेकर दोहाकार माहेश्वर तिवारी का कहना है कि आज यदि भैया नीम जैसे कड़वे हो गये हैं। तो दीदी बबूल के काँटों की तरह नुकीली। कभी पिता अगहनी धान और माँ पके हुए मगही पान जैसी हुआ करती थी। साँझ और विहान भाई और बहन जैसे होते थे। मगर आज आधुनिक की होड़ में भागता हुआ समाज सारे सम्बंधों को तोडने में ज़रा भी नही हिचकिचाता आधुनिक समाज में भरे ऐसे दूषण को दोहाकार विषय की मार्मिकता के साथ व्यक्त करता है-

रिश्तों के बदले हुए, दिखते सभी उसूल।
भैया कड़वे नीम-से, दीदी हुई बबूल।।(41)

कवि की वर्जनाएँ समाज में व्याप्त अतर्कित रुढियों, थोथी और अंधी मान्यताओं पर गर्हणाभरी द्रष्टि डालती हैं तथा सम्प्रदाय, जातिवाद, क्षेत्रवाद और भाषावाद जैसे विघटनकारी तत्वों पर आक्रोश प्रकट करती हैं। समाज में व्याप्त प्रान्तवाद, जातिवाद जैसे दूषणों के कारण मानवता पर प्रश्न चिह्न लग रहा है। समाज में सत्य और ईमानदारी जैसे मूल्यों का आज निरंतर ह्रास हो रहा है। निश्चय ही आज चोरी, चुगली और चापलूसी जैसे दुर्गुण ही चातुर्य के पर्याय बन गये हैं। ऐसे ही लोग समाज में विकास कर रहे हैं, आगे बढ रहे हैं। हर व्यक्ति अधिक से अधिक धन संचय के उपक्रम में

जुटा हुआ है। कर्मचारी, अधिकारी, नेता या पुजारी जो भी जहाँ हैं वहीं धन कमाने की होड़ लगाये अपनी जेबें भरने में लगा हुआ है। न तो कहीं किसी को अपने कर्तव्यों का ध्यान है और न ही देश और समाज की चिंता ऐसे में रिस्ते एवं परिवार की भावुकता के एहसास महसूस नही होते। दोहाकार हरेराम 'समीप' ऐसे ही रिश्वतखोर समाज का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करते हैं। जहाँ सभी के सभी एक समान हों वहाँ कौन किसे समझा सकता है -

रिश्वतखोर समाज में, कौन किसे समझाय।
सारे नंगे हों जहाँ, कोई क्यों शरमाय।।(42)

इसी प्रकार वे आगे कहते हैं -

आँखों में छाये रहे, बंगला, गाड़ी, शान।
भूल गया मैं देखना, बच्चों की मुस्कान।।(43)

आज मानव समाज में दैनिक जीवन की उपयोगी सामग्री की मांग बढती जा रही है। ऐसे में जरुरतों को पूरा करने के लिए समाज में कृत्रिम तरीकों से इन मांगो को पूर्ण किया जा रहा है। रासायनिक के उपयोग से पैदावार तो बढी है। किन्तु रोग-बीमारियां भी बढीं है। खाद्यान्नों में विषाक्तता बढ़ी है स्वादहीनता बढ़ी है। कवि के विचार निम्न दोहे में देखे जा सकते हैं।

पूर्वाधिक उर्बर रही, कर खेतों को खाद।
पर पहले जैसा रहा, कहाँ खाद्य में स्वाद।।(44)

इन्ही भावों को व्यक्त करते हुए डॉ. रामप्रसाद मिश्र अपने खण्ड काव्य 'स्वर्गता' में लिखते हैं :- ''दशहरी आम मटियारा (लखनऊ) का पीला, चिकना खरबूज, बासमती। कहाँ गयीं ये वस्तुएं। कहाँ गये वे स्वाद। कहाँ गये आल्हाद।''

सारी विषमताओं को देखकर जन-जन के मन में आक्रोश है और विवश क्रोध की आग है। अंग-प्रत्यंग में, पोर-पोर मे पीर है तो आँखों में नीर का होना स्वाभाविक है। इन परिस्थितियों से उबरने के लिए जनमानस अब बदलाव चाहता है -

अन्तर में आक्रोश है, जीवन में बिखराव।
माँग रहा यह दौर है, इंकलाब-बदलाव।।(45)

सामयिक दोहों में अन्योक्तियों के माध्यम से सामाजिक विषमताओं को लक्ष्य करके आधुनिक दोहाकारों ने अपनी लेखिनी के जौहर दिखाये हैं। कहीं पर नागर सभ्यता पर, कहीं निरर्थक पाषाण पूजा पर, तो कहीं समय की मार से कुण्ठित समाज इन दोहों में स्पष्ट नज़र आता है। दोहाकार

समाज की एक वास्तविकता को व्यक्त करते कहता है कि मनुष्य जब तक समर्थ है, समृद्ध है तब तक उसके पीछे स्वार्थी तत्वो की भीड़ लगी रहती है। किन्तु जब वह निर्बल असमर्थ एवं अधिकार विहीन और विपन्न हो जाता है तो सभी उसका साथ छोड़ देते हैं। समाज में उसकी कोई कदर नहीं रहती। हमारी नीति भी यही कहती है कि जो बुरे समय में साथ दे सच्चा स्नेही, मित्र वही होता है, परन्तु आज समय की वास्तविकता बताते हुए कवि 'अनन्त' कहते हैं -

भाग्य बिगड़ते ही, सगे, भी न पकडते हाथ।
पर छाँही तक छोड़ती, अन्धकार में साथ॥(46)

आज समाज में लाभ और हानि पर विसद चर्चाएं चलने लगीं है। कोई भी नुकसान नहीं भोगना चाहता। सभी स्वतंत्र रहकर अपने अलग ही तौर तरीकों से जीना चाहते हैं। अतः जीवन में दूसरे के हस्तक्षेप को मिटाने के लिए घड़ द्वार जमीन जायदात अनेक नामों में बँट चुकी है। भाव वैषम्य एवं मत मतान्तर के कारण व्यक्ति एक दूसरे से अलग होता जा रहा है। जिसके कारण आगे आने वाली पीढ़ी को अनेक असुविधाएं भोगने के लिए तैयार रहना होगा। दोहाकार हरेराम 'समीप' घरों के होने वाले बटवारे के कारण पैदा होनेवाली असुविधा का वर्णन निम्न दोहे में करते हैं -

पापा, चाचा ने किये, आँगन के दो फाड़।
घर के बच्चों के लिए, रेखा बनी पहाड़॥(47)

इसी प्रकार कवि आगे कहते हैं कि आज अपनों के ही दुःख देखकर आँख में पानी नहीं आते। स्नेह-सद्भाव की सारी भावनाएँ खत्म हो चुकी हैं। ऐसा मानव समाज मानव जीवन के अस्तित्व के लिए घातक है। साम्प्रदायिकता की कट्टर भावनाएँ तेज हो गयीं हैं। ऐसे में स्वयं अपने ही हाथों से व्यक्ति अपना नाश कर लेगा समाज के सामयिक विषयों को कवि दोहा के दो टूक कथ्य में बाँधकर बड़ी ही मार्मिकता के साथ प्रस्तुत करता है, क्षणभर में ही सारी स्थिति समझ में आ जाती है -

आँखों का पानी मरा, मरा स्नेह सद्भाव।
सबके अपने स्वार्थ हैं, सबके अपने दाँव॥(48)

सामाजिक वर्ण्य विषयों में अनुबंधित समसामयिक दोहा के अनुशीलन से स्पष्ट है कि कवियों ने समाज में व्याप्त प्रत्येक समस्या को गहराई तक लिखा है और समाज में फैले हुए भ्रष्टाचारों, कुरीतियों, विषमताओं के प्रति कवि के मन में गहरा क्षोभ है। अपने भावों को व्यक्त करने के लिए

इन आधुनिक दोहाकारों ने प्रभावशाली वाक्चातुर्य का प्रयोग किया है। इन दोहों में जहाँ एक ओर लोकजीवन की झाँकी है वहीं दूसरी ओर कवि की अपनी मौलिक अभिव्यक्ति भी है। जिनमें उचित अनुचित की प्रेरणा मिलती है। समाज का अन्तरंग और वहिरंग चित्र उकेरता हुआ कवि निश्चित ही अपनी सूक्ष्म दृष्टि का प्रमाण अपने दोहों में प्रस्तुत करते हुए चला है।

कवि एवं दोहाकार माहेश्वर तिवारी, मानव मन में बढते हुए शहरी प्रभाव अर्थात शहर के प्रति आकर्षण और ग्राम के प्रति विकर्षण के भावों को भी सहज अभिव्यक्त करते हैं। जिसके कारण शहरी जनसंख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है और आवास की समस्याएँ दिन प्रतिदिन बढतीं जा रहीं हैं। इसी द्रष्टि से कवि कहता है -

गये निवाला ढूंढने, लोग जहाँ, जिस ठौर।
झुग्गी, झोपड़ियाँ बढ़ी, शहर-दर-शहर और॥(49)

इस तरह विखरते हुए समाज पर -

बिखर रहा है इन दिनों, यूँ संगठित समाज।
जैसे कोई छील दे परत-दर-परत प्याज॥(50)

समाज में बढते हुए आपसी दुराव के कारण अहिंसा के स्वर हिंसा में बदल गये हैं। कवि समाज की ऐसी दशा देखकर अत्यंत दुःखी है। जहाँ हर गली, गाँव, उपवन, धार्मिक स्थल, अशांत हों, जहाँ मानवता का निरंतर ह्रास हो रहा हो वहाँ के फूलों की सुगन्ध भी सुख नहीं पहुंचाती-

गली, गाँव, उपवन, नगर, मंदिर हुए अशान्त।
खुश्बू फूलों में नहीं, मुखड़े दिखते क्लांत॥(51)

समाज को लेकर ऐसे अनेक वर्ण्य विषय है । जिन पर जितना कहा जाय कम ही है । जब सामाजिक विषय को लेकर कवि की कलम चलती है ऐसे में दहेज का दूषण अछूता कैसे रह सकता है। युगों से समाज में दहेज का दूषण भरा चला आ रहा है। मनुष्य में जब तक लालच समाप्त नहीं होगा तब तक इस दूषण को मिटा पाना मुश्किल है । दहेज प्रथा को लेकर बहुत अधिक साहित्य लिखा जा चुका है और आज भी समाज के इस दूषण पर कवि अपनी कलम चला रहे हैं। दोहा जैसे लघुवृत्तीय छन्द के द्वारा समाज पर सीधे चोट करना, थोडे में ही सब कुछ कह देने की सहजता दोहा में विध्यमान है। कवि विष्णु विराट दहेज और उसके दूषित परिणाम पर कहते हैं कि घर में बेटी का जन्म होते ही उसके विवाह की सोच बाप को निरन्तर सताने लगती

है । मेहनत, मजूरी करके पाई-पाई जुडना शुरु हो जाता है। जिसमें घर की कई सुख सुविधाएं दब जाती हैं। वे कहते है -

घर घूरौ हैवे लग्यौ, बिटिया भई जबान।
जोरत जुरै न जोर कछु, ऐंठत देह कमान।।[52]

मदन लाल मुन्सी भए, जब छोरी के बाप।
दीठि–देह–तेजी–तमक, झुकन लगे चुपचाप।।[53]

वैसे तो आज शादी-विवाह के समीकरण बदल चुके हैं। मगर आज भी जो खानदानी समाज में रहता है। उसके लिए शादी विवाह आज भी सोच का विषय बना हुआ है। जिसमें फँसकर घर तबाह हो जाते हैं, खेती बिक जाती है, घर गिरवी हो जाता है। ऐसे में सम्पन्न पविार भी विपन्नता की ओर प्रयाण कर जाता है। समाज का यह दूषण आज भी प्रश्न चिह्न बना हुआ है। कवि अपने जीवन में इसी समाज से बहुत कुछ सीखता और ग्रहण करता है और अपनी रचनाओं के माध्यम से शेष जगत को वापस भी कर देता है। इन समसामयिक दोहाकारों ने अपने दोहों में समाज में चतुर्दिक व्याप्त राजनीति के हाथों हो रहे भ्रष्टाचार, शोषण, मूल्य-विघटन, आतंकवाद से उत्पन्न त्रासद-यथार्थ, स्वार्थपरता, अवसरवादिता, योजनाओं का खोखलापन, भ्रूण हत्या, दहेज प्रथा, नशाखोरी, व्यक्तित्व के बहुरुपिये पन, छल-द्म और बिकाऊ न्याय व्यवस्था जैसे समसामयिक मानव द्रोही पक्षों पर भी खुलकर प्रहार किया है।

शृंगार :-

वैसे तो अधिकांश दोहाकारों ने अपने-अपने ढंग से कथ्य की प्रासंगिकता को रेखांकित करते हुए अनेक अभिनव प्रयोग किये हैं किन्तु कुछ दोहाकारों ने प्राकृतिक परिवेश में तथा प्रकृति के विभिन्न उपकरणों को आधार बनाकर अपने अभीष्ट कथ्यों को नये उद्गारों में व्यक्त किया है।

प्राकृतिक परिवेश को नूतन विचारों की शृंखला में प्रस्तुत करते हुए इन दोहाकारों ने सूरज, चंदा, तारे, ऊषा, भोर, बादल, इन्द्रधनुष, वर्षा, बिजली, ओले, शर्दी, गर्मी, पत्तियाँ, दूब, बेल, फल, रोशनी, अंधकार जैसे उपकरणों के आधार पर बिम्म अथवा प्रतीक के माध्यम से अपने कथ्य प्रस्तुत किये हैं।

इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इन तमाम सामयिक दोहाकारों ने प्रकृति को परंपरित रुढि अर्थो में ही व्यक्त नहीं किया वरन् उन्होंने प्रतीकों एवं बिम्बों के माध्यम से एक व्यवस्थित फलक पर उन्हे मौलिक रुप से उकेरा है। विभिन्न अलंकारों का प्रयोग और अन्योक्ति प्रसंग इस

संदर्भ में विशेष ध्यातव्य हैं। इस तरह के कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं। कवि समीप जी कहते हैं -

अच्छा लगता है तेरा, आना मित्र स्वरूप।
सर्द हवा के दौर में, ज्यों गर्मीली धूप।।(54)

इसी तरह -

कर हस्ताक्षर धूप के, खिला गुलाबी रूप।
चले किरन-दल पाटने, अन्धकार के कूप।।(55)

मानवीय संवेदनाओं को प्रकृति के माध्यम से कुछ इस अंदाज में व्यक्त किया गया है। जैसे -

और सुमन कुछ बीन ले, और निखार सिंगार।
कुछ पल का ही शेष है, बासन्ती त्योहार।।(56)

इसी परिदृश्य को कवि इन शब्दों में भी व्यक्त करता है -

अंधकार को चीरता, उभरा एक प्रकाश।
तेरी आँखे बीजुरी, मेरे दृग आकाश।।(57)

प्रकृति के मानवीकरण की बात जैसे इस दौर में सामान्य हो गई है। हर दोहाकार अपने-अपने कथ्य में इस अंदाज को व्यक्त करता रहा है। जैसे -

फिर करवट लेकर उठी, नयी नवेली भोर।
आसमान के घाट पर, हुआ रंग का शोर।।(58)

इसी तरह -

इन्द्र धनुष के घाट पर, नहा रहे आकाश।
क्षितिजों के तट पर बसे बरखा के रनिवास।।(59)

कुछ ने नये अंदाज में प्रकृति से इस तरह भी रुबरु हुऐ हैं। जैसे -

कुम्लाए मन पर गिरा, नेह भरा जब नीर।
नस नस शिमला हो गई, रोम रोम कश्मीर।।(59)

हिन्दी साहित्य के प्रत्येक कालक्रमों में श्रृंगार को लेकर कवियों ने अनेक रचनाएं रचीं हैं। साहित्य में श्रृंगार एक ऐसा विषय है। जिस की अनिवार्यता हर युग में स्वतः ही देखी जा सकती

है। कवियों ने कभी अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न रखने हेतु शृंगार का वर्णन किया है तो कभी हृदय की अध्यात्म भावों से प्रेरित होकर इस संसार के आश्रयदाता (परमात्मा) का शृंगारिक वर्णन किया है। कहने का तात्पर्य है कि शृंगार में कभी लौकिक तथा कभी अलौकिक शृंगार का वर्णन होता रहा है। देशकाल की आवश्यकतानुसार इन कवियों ने शृंगार को साहित्य में सृजित किया है। कभी-कभी तो यह शृंगार विषय पर आगे लिखने की कोई गुंजाइश ही नहीं छोडी। परन्तु फिर भी हम जानते हैं कि ''परिवर्तन संसार का नियम है'' । यह अटल सत्य गीता का उपदेश है। इसी उपदेश को स्वीकारते हुए हम समसामयिक जीवन में अनेक परिवर्तन देख सकते हैं।

आज सौन्दर्य के उपादान, आलम्बन, प्रतीक, बिम्ब आदि में पर्याप्त अन्तर आ गया है। जो शृंगार के वर्णन में एक नयी परम्परा एवं नव्य प्रस्तुति को प्रस्तुत करता है। दोहा साहित्य में पूर्ववर्ती दोहाकारो ने शृंगार विषय में अनेक प्रयोग किये हैं। परन्तु आधुनिक साहित्य में शृंगार के परम्परित वर्ण्य विषय के कलेवर में पर्याप्त अन्तर आया है। समसामयिक दोहा में कवियों ने प्राकृतिक परिवेश में बैठकर अपनी बात सहज ही कह दी है जिसमें चमत्कार प्रदर्शन की भावना उतनी तीव्र नहीं है जितनी की कथ्य को स्वभाविक अंदाज में कहने की है।

आज दोहाकार चार दीवारी से निकल कर प्रकृति के शृंगारिक रुप को अधिक पसंद करता है। तभी तो छायावाद के प्रसिद्ध कवि सुमित्रानंदन पंत नारी के सौन्दर्य की अपेक्षा प्रकृति के सौदर्य को अधिक महत्व देते हुए कहते हैं -

छोड द्रुमों की मृदु छाया तोड़ प्रकृति से भी माया।
बाले ! तेरे बाल जाल में कैसे उलझा हूँ लोचन, भूल अभी से इस जग को।।[60]

वहीं दूसरी ओर जयशंकर प्रसाद जी ने 'कामायनी' में श्रद्धा के सौन्दर्य का वर्णन तो किया है लेकिन उसमें भी प्रकृति ही चारों ओर नज़र आती है -

खुल रहा मृदुल अधखुला अंग, नील परिधान बीच सुकुमार।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघवन बीच गुलाबी रंग।।

इस प्रकार परम्परा से चले आ रहे शृंगार विषय के कथ्य में परिवर्तन आ गये हैं। आधुनिक दोहाकार कृष्णेश्वर डींगर जी निम्न दोहे में अपनी शृंगारिक द्रष्टि का वर्णन करते हैं -

गेंदा पगड़ी बाँधकर बार-बार बलि जाय।
सरसों नाँच दिखा रही, पछवा संग बलखाय।।[61]

इसी प्रकार डींगर जी खेतों में ही खडे होकर अन्य भी द्रष्य देखते हैं जिसमें लहराते खेत सम्पन्नता का संदेश दे रहे हैं। और खुले मैदान में ये बालियॉ जिनमें किसान के सपने सज रहे हैं। परियों का रुप लेकर नाच रहीं हैं -

हरे खेत में बालियाँ सिर पर ओढे धूप।
नाच रहीं मैदान में ले परियों का रुप।।(62)

इसी तरह, प्रकृति के मनोरम स्वच्छ, उज्वल रूप को देखिए -

किरणों के पथ से उतर फैली चारों ओर।
श्वेत चाँदनी बिछ गयी, जिसका ओर न छोर।।(63)

जब प्रकृति का शृंगारिक सौंदर्य मानवीय सौन्दर्य के साथ टकराता हैं तो इस दोहरे सौन्दर्य की स्थिति के प्रभाव को वर्णित करते हुए श्रीकृष्ण शर्मा कहते हैं कि -

सिल्किन साडी पर पडी, जब संध्या की धूप।
आँखों में खुलने लगा, वही वासंती रूप।।(64)

इसी तरह श्रीकृष्ण शर्मा जी पृथ्वी की शृंगारिक छटा को आसमान पर ले जाते हैं। जहाँ उन्हें खेतों पर काम करने जा रहे मजदूर आदिवासी शृंगार से ओत-प्रोत नज़र आ रहे हैं। और दृष्य ही बदल गया है। आसमान पर उडनेवाले बादलों को देखकर दोहाकार शर्माजी कहते हैं -

आदिवासियों की तरह, वस्त्र पहन रंगीन।
मँड़ई करने जा रहीं, ये बदलियाँ हसीन।।(65)

दोहाकारों ने विभिन्न ऋतुओं के वर्णन के माध्यम से अनेक बिम्ब और भाव चित्रों को उकेरा है। जाडे की धूप का रंग, उसकी आह्लादक ऊष्मा जो सुख देने वाली है। उसके लिए प्रतीक्षा की व्यग्रता, मिलन का सन्तोष आदि अनेक हार्दिक भावों का अहसास होने लगता है। प्रकृति में होने वाला परिवर्तन भी मनुष्य को बडा ही कुछ खास होने का अनुभव कराता है। मधुर गीतकार दोहाकार कुछ ऐसे ही भाव निम्न दोहा में व्यक्त करता है -

जाड़ा आते ही प्रकृति, बदले कितने रूप।
पछुआ प्रोढा सी लगे, और नवोढा धूप।।(66)

इस तरह -

फागुन आकर दे गया, कुछ ऐसा आदेश।
आँखों-आँखों में मिले, फूलों के दरवेश।।(67)

प्रातःकाल में उदित होने वाले सूर्य को लेकर साहित्य के अनेक महान कवियों ने अनेक विम्बों, उपादानों का प्रयोग करके अपने कथ्य को प्रस्तुत किया है। इसी संदर्भ में आधुनिक कवि आचार्य भगवत दुबे ने प्रातःकालीन उदित सूर्य के प्रभाव एवं सृष्टि में होने वाले परिवर्तन पर अपनी अलग ही छटा विखेरी है। हरी घास पर टंगी ओस की बूँदें सूर्योदय होते ही धीरे-धीरे लुप्त होने लगतीं हैं। स्वभाविक दृश्य को दोहाकार निम्न भावों में व्यक्त करता है -

पूर्वांचल पर जब जगें, आभा के अवतंस।
शबनम के मोती चुगें, तब किरणों के हंस।।(68)

इसी प्रकार दुबे जी श्रृंगार के एक और स्वरुप का उद्घाटन करते हुए कहते हैं -

राधा-सी उमड़ी घटा, खेत पियासे श्याम।
सावन-भादों में हुई, धरती गोकुल धाम।।(69)

जब चारों ओर सौन्दर्य का वातावरण छाया हो और हृदय में भी शृंगारिक अनुराग उमड़ रहे हों तब मन पर काबू नही रहता। ऐसे में कुछ हसीन भूल भी हो जाना स्वभाविक है। कैलाश गौतम जो कि समसामयिक शृंगारिक दोहा सृजन में काफी प्रसिद्ध हस्ताक्षर हैं। वे अपने दोहों में शृंगार की नई मार्मिकताएँ सीधे साधे ढंग से कह देते हैं। कछार की गोरी धूप में सरसों के फूल की तरह खिलने वाले गौतम जी मौज-मस्ती के गायक भी हैं। इसी लिए दोहों में फागुन की छटा, होली का उन्माद वासन्ती प्रकृति का वैभव स्थान-स्थान पर बिखरा दिखायी देता है -

गोरी धूप कछार की हम सरसों के फूल।
जब जब होंगे सामने, तब तब होगी भूल।।(70)
ओस नहायी चाँदनी, रंग नहाये फूल ।
आते जाते हो गई, वही दुबारा भूल।।(71)

इस प्रकार आधुकिन दोहाकार के ऋतुवर्णन, मौसम एवं सुन्दर प्रकृति चित्रण में कल्पना की प्रधानता है। ऋतुओं के परिवर्तन से मानव मन में भी परिवर्तन आते हैं। इन परिवर्तनों को प्रभावशाली बनाकर पाठक के हृदय तक पहुंचाने में कवि को सफलता मिली है। उपमा, रुपक, उत्पेक्षादि अलंकारों का संयोजन समुचित एवं सार्थक है।

साथ ही साथ दोहाकारों ने शृंगार वर्णन के दोनों रूपों पर भी चर्चा की है। जिसमें संयोग शृंगार का बडा ही मादक किन्तु मर्यादित चित्रण हुआ है। संयोग शृंगार का एक मादक चित्र कविवर अनन्त राम मिश्र जी के निम्न दोहे में देखा जा सकता है -

कान्त-कक्ष में पट खुले, कान्त मिलन सुखसाज।
कान्ता के तन पर तनी, बनी आवरण लाज।।(72)

इस तरह -

प्रिया-अधर लाली गये, प्रिय-कपोल पर रेख।
या चमका प्रणयाग्नि, पा, चुम्बन-लहशुन-लेख।।(73)

इन आधुनिक दोहों में कविताकामिनी और मनुजा के अद्‌भुत सौन्दर्य का वर्णन है। इनमें आलम्बन और उद्‌दीपन विभावों का ऐसा सजीव चित्रांकन है। जिसे देखकर कोई भी सहृदय पाठक रस विभोर हुए बिना नही रह सकता। विषय के अनुकूल वृत्तियाँ और रीतियाँ कवियों की प्रतिभा का गीत गाती हैं। डॉ. उर्मिलेश के निम्न दोहे में श्रृंगार की मनोरम छटा प्रस्तुत हुई है -

भींगे कपड़ों में दिखे, कैसा धरा-उभार।
जला-जलाकर बिजलियाँ, बादल रहे निहार।।(74)

हल्दी उबटन से खिला और गेहुंआ रूप।
बरनी की लज्जा लिये, दिखी शरद की धूप।।(75)

ऐसे अनेक श्रृंगार परक दोहों में कवि की ऐकान्तिक अनुभूतियाँ हैं। मधुर और मोहक शब्दावली में रमणीय अर्थो की प्रतिपादिकता है, लोकोत्तर आह्लादकारी क्षमता हैं। दोहाकार अपनी हार्दिक मनोस्थिति को बताते हुए कहता है।

तुम्हे देख कैसे भला आँखे लेता मूँद।
ये सीपी हैं चाहिए, इन्हे स्वाति की बूंद।।(76)

श्रृंगार को विषय बनाकर इस युग के दोहाकारों की अपनी अनुभूति मुख्यतः सृष्टि व्यापी रही है। जिसमें पर्यावरण, वातावरण एवं ऋतुओं में होने वाले सर्वग्राही परिवर्तन पर इन दोहाकारों की दृष्टि कुछ अधिक ही सजग और स्नेहायित रही हैं। बरखा ऋतु के आने से चारों ओर खुशी की लहर दौड जाती है। जिसका प्रभाव सृष्टि व्यापी होता है। मानव, पशु, पक्षी, जानवर, कीट, पतंगे सभी पर वर्षा ऋतु का प्रभाव देखा जा सकता है। कवि की दृष्टि भी इस प्रभाव को झेले बिना नहीं रहती और वह बागों में गाने वाली कोयल, नाच दिखाते मोर आदि का स्वभाविक वर्णन भी किये बिना नहीं रह सकता।

बरखा रानी हर्ष से सबको करे विभोर।
गीत पपीहे गा रहे, नाच रहे हैं मोर।।(77)

HANSA MEHTA LIBRARY
University of Baroda

इसी प्रकार -

हरित ओढनी का मिला धरती को उपहार।
नभ पहने विधुत-मुकुट लुटा रहा है प्यार॥[78]

आधुनिक दोहाकारों ने कहीं कहीं पर श्रृंगार के ऐसे सुन्दर दृश्य खींचे हैं, जिनमें कुछ-कुछ रीतिकालीन कवियों की भी याद आ जाती हैं। जैसे बिहारी ने कृष्ण के श्याम वर्ण और शैल पर्वत की समानता अपने एक दोहे में सजाई है और उनका पीताम्बर प्रातःकाली सूर्य की किरणों के प्रकाश का अहसास भी करता है।

सोहत ओढे पीत पट श्याम सलोने गात।
मनहु नीलमणि शैल पर, आत पड्यो प्रभात॥[79]

कुछ-कुछ ऐसे ही वर्ण्य को लिए हुए ओम वर्मा का निम्न दोहा आधुनिक सजावट के साथ प्रस्तुत हुआ है-

यों चमके है दामिनी, ज्यों गौरी की देह।
मंडित हो मणिमाल से, लुटा रही हो नेह॥[80]

कथ्य की ऐसी अनेक प्रस्तुतियाँ अधिकांशतः रीतिकाल साहित्य में प्राप्त होतीं हैं जिनकी छाप आज के दोहों पर भी कहीं-कहीं अवश्य देखी जा सकती हैं -

श्याम रंग मीरा रंगी, चढा न दूजा रंग।
श्याम रंग के सामने, बाकी सब बदरंग॥[81]

श्रृंगार की नव्य दृष्टि एवं सहज ही स्थिति को समझ लेना आधुनिक दोहाकारों का विशेष गुण रहा हैं। जहाँ किसी एक की सुन्दरता का वर्णन होने से दूसरी की सुन्दरता अपने आप ही सिद्ध हो जाती है -

गोरी-नर्म हथेलियाँ, उनमें जगमग दीप।
मोती को थामे हुए खुली हुई ज्यों सीप॥[82]

इस प्रकार दोहाकार शैदी जी गोरी-नर्म हथेलियों को सीप की संज्ञा देते हैं और हथेली में जलता दीप मानो चमकता हुआ मोती हो। इसी प्रकार आगे कवि श्रृंगार का एक और उपमान प्रस्तुत करता है -

है अचरज गोरी खडी सूर्य मुखी ले हाथ।
चन्द्रमुखी-सूरज मुखी दोनों हैं इक साथ।।(83)

श्रृंगार में यदि ब्रजभाषा का मधुर लालित्य का संयोग हो जाए तो कथ्य में चार चाँद लग जाते हैं। ऐसे ही समसामयिक विषयों से संदर्भित विष्णु विराट के ब्रजभाषा में लिखे गये दोहों की छटा निराली है। आज मनुष्य को रोजी की तलास में घर परिवार से दूर जाना पड़ता है। स्वजनों का आत्म स्नेह और प्रिय का परदेश से वापस आते ही प्रियतमा आलिंगन करती है। कवि विराट संयोग श्रृंगार के सहज रुप को प्रकट करते हुए कहते हैं -

प्रिय परदेशी आत ही, भरि भेंटी इक साथ।
मैहंदी मैहंदी है गए, गोबर बारे हाथ।।(84)

इस प्रकार हम अनेक कवियों के दोहों को देख सकते हैं जिन्होंने परम्परित वर्ण्य विषय को अपनी आधुनिक सोच एवं दृश्य विधान के साथ प्रस्तुत किया है। श्रृंगारिक भावों का वर्णन करनेवाले ये दोहाकार श्रृंगार में भी सामयिक युग को ही सामने रखते हुए नज़र आते हैं। उनका यह श्रृंगार बंद कमरे का संकुचित श्रृंगार नहीं है। बल्कि सृष्टि व्यापी श्रृंगार है। इन दोहों में न तो किसी खास नायिका के अंगों का नख-शिख वर्णन है न प्रबंधात्मक कथा को इन दोहों में समाहित किया गया है। आधुनिक दोहे (खड़ी बोली के दोहे) अलग-अलग तिथि भावों में व्यक्त फुटकर दोहे हैं। जिनमें प्रत्येक दोहे का अपना स्वतंत्र अस्तित्व और सौंदर्य है। अतः दो टूक शब्दों में ही बात पूरी हो जाती है और कथ्य साकार हो जाता है।

नीति-मर्यादा :-

दोहा छंद के परंपरित वर्ण्य विषय में नीति से सम्बंधित दोहों का बडा ही विशेष महत्व रहा है। दोहा लघुवृत्तीय छंद है तथा गेय भी है। अतः लोक समाज में नीति को लेकर कथित दोहे बडे ही प्रसिद्ध एवं प्रचलित रहे हैं। जिन्हे याद रखना सहज एवं सरल है। अतः अनेक कवियों ने नीति से सम्बंधित अपने भावों को इसी छंद में वर्णित किया है, ऐसे कवियों में रहीम, वृंद, गिरधर, तुलसी, कबीर आदि अनेक कवियों का नाम लिया जा सकता है।

इन लोक नीति से सम्बंधित दोहों में मानव जीवन की समग्रता को समेटा गया है। मानव मन के सहज भावों से लेकर छल-छद्म धोखा-फरेब, विचार, अभिप्राय आदि तक की चर्चा की गयी है। समसामयिक दोहाकारों ने इन दोहों में समाज रूपी भवन की प्रत्येक ईंट को उखाडकर

देखा है। जिसमें मानवीय स्वभाव की व्याख्या बहुत ही मनोवैज्ञानिक, सुन्दर एवं सटीक है। अपनी परम्परा में बंधे चले आ रहे इन नैतिक दोहों की सदुक्तियों को पढकर आज भी रहीम, कबीर, तुलसी की याद आने लगती है। कुछ दोहे हिन्दी के सिद्ध कवियों की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं तो कुछ पुराण साहित्य की ओर चेतना को खींचकर ले जाते हैं। आधुनिक दोहों के परिपेक्ष्य में कवि अनन्तराम मिश्र 'अनंत' अपने निम्न दोहे में आग, नागर, रिपु और रोग को समूल नष्ट करने की सलाह देते हुए कहते हैं कि -

हो जाते हैं शीघ्र ही, ध्वस्त मूर्ख वे लोग।
अर्द्धनष्ट जो छोड़ते, आग, नाग, रिपु, रोग।।[85]

महात्मा तुलसीदास ने भी इसी परिपेक्ष्य में कहा था -

रिपु रुप पावक पाप, प्रभु अहि गनिय न छोट करि।

कभी-कभी तो कवि अपने इन दोहों में इतने पते की बात कह जाता है कि जो अनायास ही कंठस्थ हो जाती है -

चलचित्रों के गीत हों या आँधी के आम।
अधिक समय तक टिक सके, कब दहेज के दाम।।[86]

ऐसे नीति परक दोहों को माध्यम बनाकर दोहाकारों ने समाज को सही राह दिखाने का यत्न, निरन्तर करते रहे हैं। जिसमें जीवन की सही परिभाषा भी मिल जाती है। दान-पुण्य और परोपकार का महत्व धर्मग्रंथों एवं शास्त्रों में बड़ी ही गम्भीरता से बताया गया है। इसी महत्व को महात्मा तुलसीदास ने भी अपने दोहे के माध्यम से ही प्रस्तुत किया है जो भारतीय लोक समाज में आज भी बहुचर्चित है -

तुलसी पंछिन के पिये, घटै न सरिता नीर।
धर्म किये धन ना घटै, जो सहाय रघुवीर।।[87]

कुछ इन्ही भावों से मेल खाते हुए आधुनिक दोहाकारों ने भी दोहों का सृजन किया है-

दान-पुष्य से धन नहीं, जाता जन से दूर।
डालें छँटने पर अधिक, फलता है अंगूर।।[88]

दोहा लोकाग्रही छंद रहा है अतः लोकाचार की बात दोहा छंद में अधिका-अधिक प्राप्त होती है। जन सामान्य को उद्यमशील बनने के लिए, लोकसंग्रह में सचेत एवं सचेष्ट रहने के लिए

प्रेरित करते हुए संस्कृत के कवि ने लिखा है :-

नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।

निश्चय ही यह उपदेश शैली नहीं है। किन्तु इसमें उपदेश निहित है। यहाँ जो उपदेश है वे कवि के वाच्यार्थ में न होकर व्यंग्यार्थ में है -

तन की प्रत्यंचा खिंची, चले नजर के तीर।
बच पाया केवल वही, मन से रहा फकीर।।(89)

इसी तरह दोहाकार हरेराम समीप राजनीति को केन्द्र में रखते हुए कहते हैं कि यदि हमें घर से मुक्ति पानी है। तो दरवाजे से निकलकर बाहर चले जाते यह तो सहज उपाय है और इसी के विपरीत जहाँ बहरे लोग सोये हों उन्हें दस्तक देकर नहीं जगाया जा सकता। अर्थात् कार्य दुर्लभ हो जाता है। व्यंग्य के माध्यम से दोहाकार 'समीप' नीति विषयक भाव को व्यक्त करते हैं -

घर की मुक्ति के लिए दरवाजे को तोड़।
बहरे सोये हों जहाँ, दस्तक देना छोड़ ।।(90)

यह नीति परक व्यवहार का लाभ मानव समाज को अपने रोज मर्रा के जीवन में सहज ही प्राप्त होता रहता है। आज बाहरी दिखावे पर लोग अधिक ध्यान देते हैं। भले ही जेब खाली हों मगर दिखने में वेश-भूषा यदि अपटूडेट है तो तू जरुर लुट जायेगा। मगर जेबों में माल है और फटे हाल में घूमता है तो तुझे कोई नहीं पूछेगा। अतः दोहाकार ऐसे ही नीति विषयक विचार निम्न दोहे में प्रस्तुत करता है -

क्यों रे दुखिया! क्या तुझे, इतनी नहीं तमीज़।
मुखिया के घर आ गया, पहने नयी कमीज़।।(91)

इस प्रकार अपने प्रयोजन सिद्ध करने के लिए व्यवहारिक ज्ञान का निश्चय ही ध्यान रखना चाहिए। समाज में रहते हुए भी, अनेकानेक पुस्तको-ग्रंथों को पढते हुए भी जिसको सामाजिक व्यवहार का ज्ञान न हो, अच्छे बुरे की पहचान न हो, और जो सह-अस्तित्व का मर्म न समझें उसके लिए सारा पढ़ा लिखा ज्ञान भार स्वरूप ही होता है। इस व्यवहारिक नीति पर ज्ञान भार स्वरुप ही होता है। इस व्यवहारिक नीति परक ज्ञान पर कवियों ने अनेकानेक दोहों का सृजन किया है जिसमें संसार की सामाजिक नीतियों का वर्णन हुआ है। कहावतों एवं लोकोक्तियों के द्वारा भी ऐसे व्यवहारिक ज्ञान का खूब प्रचार एवं प्रसार हुआ है। आज भी इस परम्परित वर्ण्य विषय को लेकर समसामयिक रचनाकार लिख रहे हैं। इसी संदर्भ में कवि 'समीप' कहते हैं -

अपनी छतरी साथ रख, घर से चलते वक्त।
मरुथल में मिलते नहीं, छायादार दरख्त।।(92)

मध्यकाल में कबीर दास ने भी व्यवहारिक ज्ञान को अधिक महत्व देते हुए किताबी ज्ञान का खण्डन किया है। इस संदर्भ में कबीर का एक प्रसिद्ध दोहा उद्दत है -

पोथि पढि-पढि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढै सो पंडित होय।।(93)

यहाँ प्रेम व्यवहारिक ज्ञान की कुंजी। इसी व्यवहारिक ज्ञान में विनयशीलता का महत्व दर्शाते हुए कवि नानक की 'नन्ही दूब' को विनय धर्मिणी दूब कहकर अपना लेता है। कहने का तात्पर्य है कि विनम्रता से सम्मान प्राप्त होता है। आचार्य भगवत दुबे बाँस का उदाहरण सामने रखते हुए कहते हैं कि न तो बाँस से फल मिलता है न फूल, न ही छाँव मगर फिर भी वह पूज्य है क्योंकि उसमें विनम्रता का विशेष गुण है -

पुष्प, गन्ध, फल, छांव तक रहे न जिसके पास।
पर विनम्र है इस लिए, पूजा पाता वाँस।।(94)

इसी प्रकार दैनिक जीवन में खुशी तथा सुखी रहने के संदर्भ में दुबे जी कहते हैं -

जिस सुख सुविधा से रहें, मन पर बना तनाव।
उसे त्याग स्वीकारिये, गरिमापूर्ण अभाव।।(95)

साथ ही आधुनिक नैतिक उपदेशों में दोहाकार अभिमान और अहंकार का विरोध करता है। ये मनका अहम् ही पतन को आमंत्रित करता है। हमारे यहाँ यह कहावत भी है कि ''आसमान में पैर रखकर नहीं चलना चाहिए।'' अर्थात् जमीन में ही सीधे चलने में ही भलाई है क्योंकि जीवन का अन्त तो इसी जमीन पर ही होता है, ऐसे रहस्यपूर्ण उपदेश मध्यकाल में कवियों ने खूब दिये हैं। जहाँ राजा और रंक दोनों का ही अन्त एक समान बताया गया है। इसी संदर्भ में दुबे जी कहते हैं -

कीचड़ में मोती गिरे घटे न फिर भी साख।
व्योम चूम आये भले, गिरती नीचे राख।।(96)

हमारी नीति तो यही कहती है कि स्वतंत्रता चाहे व्यक्ति की हो या समाज की, सर्वदा सीमित ही रहनी चाहिए। तभी व्यक्ति या समाज सच्ची प्रगति के सोपान पर चढ सकता है। जैसे बिना सारथी के रथ की दिशा निश्चित नहीं की जा सकती। जल नीचे की ओर तो स्वच्छंद बह सकता

है परन्तु ऊपर उठाने के लिए प्रयास करना पडता है। परन्तु नीचे जाने के लिए जल भागता हुआ गड्ढों आदि में भर जाता है और कीचड, सडाँघ उत्पन्न करता है जो रोग व्याधि का कारण बनता है। यही स्थिति मानव मन की भी है। मन की चंचलता एवं दुर्निवार्यता को स्वीकारते हुए महात्मा श्रीकृष्ण ने कहा है -

''असंशयं महाबाहो मनः दुर्निग्रहं चलम्।''

अर्थात सर्वथा स्वतंत्र होने पर मन नीचता की ओर-दुरित-दुर्व्यसनो की ओर भागता है और जिसमें उसका विनास निश्चित होता है। अतः दोहाकार 'अनन्त' के स्वतंत्रता सम्बंधी विचार इस पंक्तियों में देखें -

जिस सुख सुविधा से रहे, मन पर बना तनाव।
उसे त्याग स्वीकारिये, गरिमापूर्ण अभाव।।(97)

इस प्रकार इन सामयिक दोहों में नैतिक उपदेश, मानव जीवन को एक सही दिशा प्रदान करते हैं। इसी प्रकार दोहाकार आगे सावधान करते हुए कहते हैं कि -

हैं अक्सर खोते रहे, सिंह जोश में होश।
और सफल होते रहे षडयन्त्री खरगोश।।(98)

साथ ही साथ शिवचरण दुबे जी ने भी कुछ नैतिक ज्ञान देकर सचेत किया है क्योंकि स्वभाव की क्रूरता के कारण इन पर भरोसा करना कठिन है। अतः वे कहते हैं -

नेता, नाहर, नाग से, रहिये सौ गज दूर।
व्यसन, व्यथा, विष से भरे, हैं स्वभाव से क्रूर।।(99)

इस तरह आज के समाज में पल रहे मानव के हाव भाव वर्ताव को ध्यान में रखकर ध्रुवेन्द्र भदौरिया आगे उसका परिचय देते हुए कहते हैं -

बढा-चढाकर बोलना सिद्ध करे अभिमान।
वाणी के वैराग्य से पण्डित की पहचान।।(100)

इसी प्रकार सहज गुणों का वर्णन करते हुए कवि महेश दिवाकर उनकी विशेषता पर जोर देते हुए लक्षण बताते हैं -

जितना ही झुकते अधिक, चीता चोर, कमान।
उतना गहरा लक्ष्य पर करते हैं संधान।।(101)

इस प्रकार इस लोकाग्रही छंद में उपदेश, लोकोक्ति, कहावतें, नीति, नियम, गुण, दोष, व्यवहार, आदि संदर्भों को लेकर आधुनिक दोहाकारों ने अपनी भाव व्यंजना प्रस्तुत की है। जहाँ नैतिक ज्ञान का भराव स्पष्ट देखा जा सकता है। नैतिक दोहों की पूर्ववर्ती परम्परा में रहीम के दोहों की सी मर्मिकता इन सम-सामयिक खड़ी बोली के दोहों में भी कहीं-कहीं स्पष्ट झलकती हुई नज़र आती है।

संस्कृति

प्रत्येक देश, समाज के पास अपनी संस्कृति एवं अपने मूल्य होते हैं। जिसके कारण अन्य से अलग उसकी पहचान होती हैं। भारत वर्ष की संस्कृति ऋषि मुनियों की दी हुई रही है जिसमें, परोपकार, प्रेम, अहिंसा, मानवता, सहृदयता आदि प्रमुख रुप से देखी जा सकती है। जहाँ मानव में विम्रता के गुण होते हैं। वहाँ त्याग ही भावना होती है। सारी दुनियाँ को त्याग और क्षमा के उदाहरण भारतीय संस्कृति से ही प्राप्त होते हैं। दधीचि ऋषि ने मानव कल्याण हेतु अपनी अस्थिओं का दान कर दिया जिसमें उनके त्याग की भावना स्पष्ट झलकती हैं। देश की संस्कृति का प्रभाव सीधे समाज पर पडता है और समाज से ही संस्कृति का निर्माण होता है। अतः समाज और संस्कृति एक दूसरे के चित्र और प्रतिबिम्ब हैं।

आज विज्ञान और तकनिकी ने बहुत ही प्रगति की है। जिससे गाँव, शहर, देश, विश्व सब एक हो गये हैं। प्रचार प्रसार के माध्यमों में क्रांतिकारी विकास हुआ है। अतः इस बढती हुई प्रगति में जहाँ बहुत कुछ नया सीखने को मिला है, वहीं बहुत कुछ सीखा हुआ लुप्त भी हो गया है। कहने का तात्पर्य है कि आज सांस्कृतिक परिवेश में पर्याप्त बदलाव आ गया है जिसके अन्तर्गत हम अपने सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास स्वयं अपने ही हाथों से कर रहे हैं। कवि समाज के इस तथ्य से चिन्तित भी हैं और भविष्य के परिणामों से आहत भी दोहाकार हरेराम 'समीप' इसी समृद्ध और विकास से होने वाली मानवीय भावनाओं के हनन से दुःखी भी हैं, वे कहते हैं -

इतनी समृद्धि हुई, इतना हुआ विकास।
भूले हम अपनी जमीं, भूले निज आकाश।।[102]

कवियों एवं रचनाकारों को हमारी परम्परित संस्कृति पर गर्व है तथा उसकी गरिमा के गीत साहित्य में निरन्तर देखे जा सकते हैं। परन्तु आज नई सभ्यता के कुप्रभाव से इस देश का सांस्कृतिक स्वरुप ही बदल गया है। कहने को तो भारत आज भी गाँवों का देश है किन्तु उसमें ग्राम्यता समाप्त

हो गई है। पारस्परिक सहयोग स्नेह-सौहार्द भाई-चारा अब कहाँ रह गया? अब न तो पहले जैसे पर्व और उत्सव रह गए हैं और न ही मेले और त्योहार, इससे व्यथित होकर दोहाकार 'संदेश' कहते हैं -

अपनी संस्कृति-सभ्यता अपना प्यारा गाँव।
ऐसी कुछ पछुआ चली, बिगड गया हर ढाँव।।(103)

सभ्यता और संस्कृति के बदलते हमारे आचरण में भी पर्याप्त अन्तर आया है। जहाँ अब हमारा कुछ नहीं बचा है। नये आचरण और संस्कृति को अपनाकर समाज आधुनिकता की होड़ में भागा जा रहा है। कवि विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक' इस बदलते परिवेश पर कहते हैं -

अब बदले परिवेश में रहा न निज कुछ शेष।
हुए पुराने आचरण, भाषा भूषा, वेश।।(105)

महज दोहा साहित्य में ही नही बल्कि साहित्य की प्रत्येक विद्या में कवियों ने भारतीय संस्कृति के गिरते मूल्यों पर अपने भावों को अभिव्यक्ति की है जिनमें निरंतर इन कवियों को अधिकतः चिन्तित ही पाया गया है -

अधुना संस्कृति के चले, बढा 'बाइ' का रोग।
मिलें परस्पर तो करें, हाय-हाय सब लोग।।(106)

अधुना संस्कृति के प्रभाव के चलते आज मानव मन की परस्पर दूरियाँ भी बढ गयीं है। रिस्ते-नाते, प्रेम-भाव अब दूर से ही अच्छे लगते हैं। संयुक्त कुटुम्ब का चलन अब पहले जैसा नहीं रहा। मानव रहने में अधिक सुविधा महसूस करता है। कवि कहता है यह सब पश्चिमी देशों का प्रभाव है जहाँ बूढे माँ-बाप को घर में रखना बोझ व असभ्य माना जाता है। धीरे धीरे मानव मन में यही भावना घर कर रही हैं जिनके कारण घर-घर न रहकर महज़ आवास रह गया है-

राख हुई संवेदना, जले नमक के खेत।
घर आँगन में डोलते, सन्नाटों के प्रेत।।(107)

टी.वी. चेनल्स और प्रचार प्रसार के माध्यमों द्वारा भारतीय संस्कृति का अधिकाधिक हनन हुआ है। आज विदेशी चेनल देख-देख कर नयी फेशन और डिजाइन का भारतीय समाज में पदार्पण हो चुका है जो कई बार गुनाहित प्रवृत्तियों को बढावा भी देता है। वेश-भूषा में आये हुए इतने बडे बदलाव से भारतीय सभ्यता पर प्रश्न चिह्न लग गया है। दोहाकार कृष्णेश्वर डींगर जी इसी प्रभाव को निम्न दोहे में प्रस्तुत करते हैं -

टी.वी. देख विदेश का, संस्कृति हुई अनाथ।
गाँधी को गाली मिले, अप संस्कृति के साथ॥(108)

इसी परिपेच्छ में दोहाकार श्रीकृष्ण शर्मा ने भी चिन्ता व्यक्त की है और वे अपने भावों को इस प्रकार व्यक्त करते हैं -

अपसंस्कृति का दीखता, कोई ओर न छोर।
लगता है, हो जायगा, सभ्य आदमी ढोर॥(109)

मनुष्य की सामाजिक जरुरतें जैसे-जैसे बढ़ती गई वैसे-वैसे धन ही उसके लिए भगवान बनता गया और आज पूरा का पूरा मानव समाज धन के पीछे भागा जा रहा है। हर जगह व्यापार ही नज़र आता है। मनुष्य ने अपना धर्म, ईमान तक बेच दिया है। कवि माहेश्वर तिवारी बदलती हुई इस रीति को लेकर कहते हैं कि -

नेम-धरम सारे हुए, ऐसे आज, अनाथ।
गंगा जल बिकने लगा, मूंग फली के साथ॥(110)

इसी प्रकार आचार्य भगवत दुबे सभ्यता की जूठी पत्तल चाटने वालों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं -

संस्कृति के नैवेद्य से मन भर रहा उचाट।
लोग सभ्यता की रहे, जूठी पत्तल चाट॥(111)

भारतीय संस्कृति की यह विशेषता रही है कि उसने अपने चलने के स्वयं मार्ग बनाये हैं और उस पथ पर अग्रसर होकर संसार को अनेक मिशालें दी हैं न कि किसी के बनाए जूठे मार्ग पर चलकर अतः कवि मनुष्य के ऐसे आचरण और व्यवहार पर चिन्तित दिखाई देता है। कैलाश गौतम कहते हैं -

नहीं रहे वे आचरण नही रहे प्रतिमान।
जिनके आगे प्रेम से, झुकता था इंसान॥(112)

नयी सदी और सभ्यता के रंग में रंगे हुए समाज की तस्वीर प्रस्तुत करते हुए दोहाकार उर्मिलेश बताते हैं कि देखिए आज की फेशन के चलते हमारे परिवेश में और क्या-क्या परिवर्तन आया है -

थाली बदली प्लेट में, हुआ कटोरा तंग।
सभी बरतनों पर चढ़ा, नयी सदी का रंग॥(113)

मानव के रोज-रोज बिगडते हुए स्वास्थ का कारण भी दोहाकार इन्ही दोहों में इशारा करते हुए कहता है जिसमें हमारी बदलती हुई जीवन शैली का बहुत बडा हाथ है। आज हम स्वयं अपने आयुर्वेद को भुलाकर अंग्रेजी दवाइयों पर अधिक निर्भर हैं जिसके परिणाम के हम स्वयं जिम्मेदार हैं क्योंकि -

पनपे पर्यावरण में यहाँ विदेशी पेड़।
हुए अपेक्षित आँवला, जामुन, हरड़, बहेड़॥(114)

परिणाम स्वरुप दोहाकार दुबे जी कहते हैं कि हमें दूसरों के आधीन होना ही पडेगा। अतः जिससे धीरे-धीरे सही राह भी दिखाता है। अपने मूल्यों एवं अपनी कला, सभ्यता, खान, पान के बदलने से भी दोहाकार चिन्तित दिखाई देते हैं। नयी पीढी नयी चमक-दमक मे पडकर प्राकृतिक, सहज, सुन्दरता को भुला बैठी है। खान-पान का उदाहरण देकर दोहाकार ब्रज किशोर वर्मा ''शैद्री'' जी कहते हैं कि -

नव पीढी को हैं कहाँ, मूल्य पुराने याद।
पकवानों में खो गया वह सत्तू का स्वाद॥(115)

इसी तरह -

कहाँ पारखी लोग अब, कहाँ प्रशंसक गाँव।
उस नट के अब नृत्य के, लिए न उठते पाँव॥

कवि अपनी ऐतिहासिक सभ्यता एवं संस्कृति खो जाने पर चिंतित हैं और प्रश्न पूछते हुए कवि महेश दिवाकर कहते हैं -

कहाँ गयी वह धीरता कहाँ गया वह राग।
राणा जैसी वीरता, पन्ना जैसा त्याग॥

इस प्रकार आधुनिक परिवेश में लिखे गये ये सांस्कृतिक दोहों में दोहाकार अधिकतः चिंतित एवं मायूस ही दिखाई देता है। वैसे इस चिंतित दृष्टि में कवि का कोई अपना निजी स्वार्थ नहीं है। बल्कि कवि अपने कवि कर्म के दायित्व का निर्वाह करता है क्योंकि साहित्य समाज का दर्पण ही है। अतः समाज के बदलते परिवेशों का प्रतिबिम्ब साहित्य पर तो जरुर ही पड़ता है और साथ ही दोहा छंद में अभिव्यक्त कवि के भावों की मारक क्षमता बढ जाती है। वह दो टूक शब्दों में ही बिना किसी लीप पोत के अपनी बात सहज ही कह जाता है। जिसका प्रभाव मानस मन पर शीघ्र ही होता है। यह दोहे की अपनी स्वभाविक क्षमता है अतः सामयिक परिवेश पर, परम्परित सांस्कृतिक विषय को लेकर कवियों ने अनेक प्रयोग किये हैं।

साहित्य :-

सामयिक दोहा साहित्य में परिवर्तित मूल्यों का जहाँ एक ओर मोह भंग है वहीं दूसरी ओर वर्तमान की विभीषिकाओं का खुला दस्तावेजी ब्यान भी है। यह बात बहुत लोकप्रिय है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है और जो साहित्य समाज की सामयिक संचेतना का प्रकाशन न कर सके वह सत् साहित्य की श्रेणी मे गण्य नहीं है। समय और चिंतन प्रवाह के मान दण्डों के अनुरुप साहित्य का स्वरुप भी बदलता रहा है। पूर्ववर्ती हिन्दी साहित्य में कला संचेतना की कसौटी कलावादी उपकरणों के औचित्य पर तथा उनके वरिष्ठ प्रयोगों पर आधारित थी। जैसे उच्चस्थ काव्य मूल्यों के अन्तर्गत शिल्प प्रस्तुति छन्द विधान, रस अलंकार, गुण-दोष शब्दशति अर्थ व्यंजना आदि की कसौटी पर ही काव्य की उत्कृष्ठता को परखा जाता है।

आज की कविता कलावादी प्रदर्शन के लिए न होकर जिन्दगी की विषम और विकट परिस्थितियों से जूझती दिखाई देती है। अकविता, सामयिक, कविता, गज़ल, नवगीत या दोहा साहित्य इन सभी विधाओं में प्रस्तुति की अपेक्षा वर्ण्य विषय पर अधिक ध्यान दिया गया है और यह तो तय है ही कि जब कविता में वर्णनात्मक या तथ्यात्मक कथ्य विश्लेषित होते हैं। तब कलावादी प्रदर्शन नगर्ण्य हो जाते हैं। दोहा साहित्य का सामयिक आरोहण किसी मानव मूल्य से संलग्न है। आधुनिक दोहाकारों ने अपने इन विशिष्ट तथा सामयिक दोहों में छन्दानुबंधन तथा शिष्ट भाषा संयोजना पर तो ध्यान दिया है। किन्तु साहित्य के कला तत्वों के प्रति कोई पूर्वाग्रही रुझान प्रदर्शित नहीं किया।

कुछ कवियों ने इस प्रदर्शित कलावादी सोच को कविता के संदर्भ में व्यक्त करते हुए कहा है -

जी चाहा तो चख लिया, वर्ना है बेकार।
कविता उनकी प्लेट में, चटनी और अचार॥[117]

इसी तरह जब व्यक्तिवादी सोच समष्टिगत चेतना में समाहित होकर एक आम आदमी की बात को मुखर करती है। तब कविता की एक सामान्य अनुभूति सार्वजनीय रुप से प्रकट होती है। तब स्त्रोता-पाठक के सामने साश्चर्य आत्मस्वीकृति प्रधान करता हुआ कवि कहता है ।

मैं पढ़कर हैरान हूँ, तेरी नई किताब।
आखिर कैसे लिख लिए, तूने मेरे ख्वाब॥[118]

आज की कविता समष्टि से व्यक्ति की ओर वापस हुई है। जबकि इससे पहले की कविता व्यक्तिगत परिवेश में सिमटकर प्रकारान्तर से समष्टिगत संचेतना का स्पर्श करती है। जैसे छायावादी स्वर हैं -

ले चल मुझे बुलावा देकर,
मेरे माझी धीरे-धीरे।

या फिर

बीन भी हूँ मै तुम्हारी रागिनी भी हूँ।
कूल भू हूँ फूल हीन प्रवाहिनी भी हूँ।

यहाँ कविता प्रथम पुरुष से अनुश्रुत है जबकि आधुनिक कविता का स्वर समष्टिगत संबोधनों से संपृक्त है -

तुम हमारे घर न अब आना,
हम तुम्हें बाज़ार में मिल जायेंगे।

या फिर

बच्चा बोला, देखकर, मस्जिद आलीशान।
एक अकेले खुदा को, इतना बडा मकान।।

हिन्दी का दोहाकार कहता है -

छोड कल्पना गीतमन मत लिख झूठे लेख।
कम से कम एक बार तो मेरी दुनियाँ देख।।(119)

इसी तरह एक और दोहा द्रष्टव्य है -

कविता मन का आइना, इसमें व्यक्ति समाज।
प्रतिबिम्बत होता रहे, सबका काज-अकाज।।(120)

वैसे आधुनिक दोहाकारों को काव्य में कला की संनिहिति से कोई परहेज नहीं है। बिम्बों और प्रतीकों के अभिनव प्रयोग कविता की लाक्षणिकता को मुखरित करते रहे हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

मूँदे नयन उलूक ने उदित हुआ आदित्य।
लगी कोकिला कूकने, सुना सरस साहित्य।।(121)

इसी तरह एक अन्य दोहाकार भी कहता है कि -

बिना दृष्टि के खोजना, उस अद्रश्य को व्यर्थ।
कभी व्यंजना के बिना, खुला शब्द का अर्थ।।(122)

यहाँ कवि प्रस्तुत दोहे में कविता की कलावादी संचेतना के प्रति आस्था व्यक्त करता है। और कविता में सपाट बयानी का निषेध करता है। प्रतीक और बिम्बों के माध्यम से कविता की लाक्षणिकता से यह प्रशस्त करता है। आज का दोहाकार पूर्वाग्रही काल प्रदर्शन से हटकर अन्तर्मुखी संवेदना से संलग्न होकर बात कहने का पक्षघर अधिक है। इस आशय का एक दोहा देखिए -

कविता होती थी सृजित, लख पावस परिवेश।
अब अन्तस के मेघ ही, कविता का उन्मेष।।(123)

जिन कवियों ने कविता में सपाट बयानी के साथ केवल सतही कथ्यों को छंद बद्ध किया है। उनकी कविता में वह सम्प्रेषण नहीं है जो दूसरी कविताओं में व्यंजित लाक्षणिकता में है। जैसे सतही कथ्य से जुडा निम्न दोहा द्रष्टव्य है -

सरोकार बदले हुए, लगते हैं कुछ और।
कविता है कम बोलती, कवि करते हैं शोर।।(124)

किन्तु इससे हटकर कविता जब लाक्षणिक सौन्दर्य से जुडती है तब दोहाकार कहते हैं-

बूँदों के संग उठ रही, सौंधी-सौंधी गंध।
धरती अब रचने लगी, हरियाली के छंद।।(125)

या फिर-

भूरे मेघों से रचित, इन्द्र धनुष आकाश।
धुनकी से है धुनकती, जैसे हवा कपास।।(126)

आधुनिक दोहा साहित्य की यदि सम्यक् समीक्षा की जाय तो यह कहा जा सकता है कि कविता में जहाँ जहाँ संवेध्य अनुभूतियों का बाहुल्य है। वहाँ कविता का सम्प्रेषण भी स्थापित हुआ है। दोहाकार कहता है -

सागर भर संवेदना, लेकर तू इस गाँव।
बसने कैसे आ गया, जहाँ जलाती छाँव।।(127)
या फिर -
दिया कुपित हो सूर्य ने, ऐसा शाप ज्वलन्त।
भूले धरा-शकुन्तला, मेघ बने दुष्यन्त ।।(128)

कहीं-कहीं दोहाकारों ने अपने पूर्ववर्ती कथ्यों को भी नये अंदाज में प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। परन्तु इस प्रकार के प्रयोग द्वितीय श्रेणी में ही स्थान पा सके हैं।

जैसे कबीर ने कहा है -

पोथी पढि पढि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखरर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।।

आज का दोहाकार कहता है कि -

रोज पुस्तकालय गये, पढ़े हजारों ग्रन्थ।
और उलझते हम रहे, मिला न कोई पंथ।।(129)

आधुनिक कवि आरोपित कलावाद का भी विरोध करता है और कहता है कि -

जिसमें अंधे शब्द हों, गूँगे बिम्ब, प्रतीक।
वह कविता जाती नहीं, जन-मन के नज़दीक।।(130)

कुछ विशिष्ट दोहाकारों ने बडे ही अभिनव रुप से कथ्य की चारुता को प्रस्तुत किया है। जो साहित्य के सौन्दर्यवादी अभिगम को व्यक्त करते हैं। इनमें देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' अशोक अंजुम, महेश अनग, विष्णु विराट, श्रीकृष्ण शर्मा, माहेश्वर तिवारी, कैलाश गौतम आदि का नाम मुख्य रुप से लिया जा सकता है। दोहाकार विष्णु विराट साहित्य में क्रान्ति के स्वर फूँकते हैं । काव्य में सोचे समझे सतही भावों को वे नकारते हैं। आज साहित्य में फैले हुए साहित्यिक प्रदूषण के कारण साहित्य वातावरण भी दूषित होने लगा है। परन्तु जब साहित्य की प्रतिष्ठा का प्रश्न होता है तो कवि के भावों में भी क्रान्ति के स्वर स्पष्ट सुनाई देते हैं -

करहुँ उपासन अगनि की, सत्त जोति की धार।
स्वत्व बोध जागृत करै, दबै न काहू द्वार।।(131)

साथ ही श्रेष्ठता एवं उज्वलता को लिए हुए कवि का निम्न दोहा द्रष्टव्य है -

फिर मन मानिक है गयौ, मन कंचन कौ ढेर।
जब सौं आपुनपौ जग्यौ, अपनै देर-सबेर।।(132)

मानव मन में चल रहे अनेक उतार-चढाव के भाव, जिनमें कर्म कर्तव्य, लाभ-हानि आदि की घुस-पैठ निरन्तर चलती रहती है। कवि विराट ऐसे ही भावों की साहित्यिक अभिव्यक्ति करते हुए कहते हैं -

फिर मन कुत्ता बावरौ, फिर मन खूनी शेर।
आखिर खरगोशी मना, कब लौ सहै अंधेर।।(131)

कवि अपने जीवन में अनुभवित अनेक अनुभवों को काव्य के माध्यम से प्रस्तुत करता है। इन अनुभवों की अभिव्यक्ति जब बडी मार्मिकता एवं श्रेष्ठता के साथ होती है। तो वह साहित्यिक अभिव्यक्ति कहलाती है। जिसमें अन्तर्मन की गहराइयों को स्पष्ट देखा जा सकता है -

नदी-धूप, ज्वालामुखी, यौवन, धन, अरमान।
जब-तब आते ही मिले, सब में कई उफान।।(134)

आज परिवेश निरन्तर बदल रहे हैं जिनमें असली-नकली सच-झूठ का दायरा सा हो गया है। कृत्रिमता और प्राकृतिकता में अधिक भेद नही रहा है। दोहाकार दिनेश रस्तोगी कहते हैं -

वो मेरी मौलीक कथा, मैं उसका अनुवाद।
सम्बंधो ने थे लिखे, अलग-अलग सम्वाद।।(135)

युगों-युगों से सत्य और असत्य में टकराव होता रहा है। जो साहित्य में वर्ण्य विषय बनकर कवियों की लेखिनी का विषय रहा है। यही परम्परित वर्ण्य विषय आज भी कवियों से अछूता नहीं रहा है। आधुनिक दोहाकार इसी परिपेक्ष्य में कहता है कि आज सत्य के तौर तरीके और उनका परिवेश बदल गया है। दोहाकार निश्चित रुप से चिंता व्यक्त करता है कि ऐसे संयोग में आगे क्या होगा? कथ्य की मार्मिकता को लिये हुए दोहाकार दिनेश रस्तोगी जी का निम्न दोहा द्रष्टव्य है -

तौर-तरीके सत्य के, बदल गया परिवेश।
पत्थर इतने शहर में, दर्पण रहे न शेष।।(136)

साहित्य में होने वाली आपाधापी, मन माना वर्णन, महज कथ्य को कहने की ललक में रचनाकार साहित्य लेखन की व्याकरणिक संयोजना पर ध्यान नही दे पाता और भावों की रेलमछेल में छन्दविधान खण्डित हो जाते हैं। वैसे जबसे अकविता या नई कविता का रुप सामने आया है तबसे काव्य में छान्दासिक त्रुटियाँ अधिकतः देखी जा सकतीं हैं। आधुनिक कविता में ऐसे अनेक प्रयोग हो चुके हैं। जिनसे निश्चय ही साहित्य की गरिमा को ठेस पहुंची है। ऐसे में कवि दोहाकार अपनी अनुभूति को व्यक्त करते हुए कहता है -

आपस में लड़ने लगे, प्रत्यय, संधि, समास।
देख-देखकर व्याकरण, रहता बहुत उदास।।(137)

इसी प्रकार दोहाकार रामेश्वर हरिद कहते हैं -

या यह सच्चा ज्ञान है या स्वारथ का जोर।
नैन द्रवित होते नहीं, अन्तस हुए कठोर।।(138)

अर्थात साहित्यकार यह तय ही नहीं कर पा रहा है कि वास्तविकता क्या है। साहित्यिक अभिव्यक्ति की श्रेष्ठता को लिये हुए दोहाकार 'हरिद' जी का उपर्युक्त दोहा आज हर मनुष्य के हृदय के तार छेड़ जाता है।

नये नये अन्वेषण और खोजों में लिप्त मानव समाज अपनी पहचान को मिटाता जा रहा है। जो साहित्यिक संस्कृति हमारे पास है उसकी दरकार न करके कुछ नया करने या नई सृष्टि की रचना करने में परम्परित कला एवं संस्कृति का ह्रास हो रहा है। दोहाकार ब्रजकिशोर 'वर्मा', 'शैदी' जी ऊँची अट्टारिकाओं पर उगी घास को हरित छंद के नाम व्यक्त करते हुए कहते हैं कि-

ऊँचे महलों के शिखर, उगी हुई वह घास।
हरित छन्द में लिख रही, सदियों का इतिहास।।(139)

इस प्रकार भावों की माला में शब्दों के मोती गूँथने की कला के दर्शन अनेकानेक दोहाकारों में देखे जा सकते हैं। जिन्होंने अनेक परम्परित वर्ण्य विषयों को आधुनिक भावों में व्यक्त किया है। यहाँ हम स्पष्ट देख सकते हैं कि ये कलावन्त दोहाकार अपने दोहों में उपदेश शैली का सहारा नहीं लेता वरन् रूपान्तर से बात को समझाता है और जन सामान्य को उद्यमशील बनने के लिए लोक संग्रह में सचेत एवं सचेष्ट रहने के लिए प्रेरित भी करते हुए द्रष्टि गोचित होते हैं। चिरन्तर काल से चले आ रहे ये वर्ण्य विषय आज भी देश की मिट्टी के साथ जुडकर इन दोहों के रुप में नज़र आते हैं।

संदर्भ सूची

1) मसि कागद् पत्रिका अंक-18, पृष्ठ 55
संपादक - श्याम सखा 'श्याम' रोहतक

2) वही " " " पृष्ठ 25

3) बिहारी सतसई, बिहारीदास, दोहा सं.01

4) बिहारी सतसई से।

5) बिहारी सतसई से।

6) केशवदास ।

7) हरेराम नेमा 'समीप' (दोहा संग्रह) 'जैसे', पृष्ठ 13, दो.11

8) हरेराम नेमा 'समीप' (दोहा संग्रह) 'जैसे', पृष्ठ 50, दो. 223

9) वही " " " " पृष्ठ 78, दो. 396

10) वही " " " " पृष्ठ 78, दो. 392

11) विश्व प्रकाश दीक्षित 'बटुक', 'बटुक की कटुक सतसई', पृष्ठ 35, दो.260

12) वही " " " " " " पृष्ठ 30, दो. 211

13) वही " " " " " " पृष्ठ 33, दो. 240

14) वही " " " " " " पृष्ठ 39, दो. 298

15) विश्व प्रकाश दीक्षित 'बटुक' कृत 'तुजुक हज़ारा' दो. 323

16) जयशंकर प्रसाद कृत 'कामायनी' श्रद्धा सर्ग, पृष्ठ 58

17) महेश दिवाकर कृत ''युवको! सोचो!'' पृष्ठ 3

18) वही " " " " " "

19) ब्रज किशोर वर्मा, 'शैदी', 'हम जंगल के फूल', पृष्ठ 63, दो. 495

20) वही " " " " " पृष्ठ 64, दो. 500

21) विश्व प्रकाश दीक्षित 'तुजुक हजारा', दो. 223

22) सप्तपदी-5 दोहा संग्रह सं. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', पृष्ठ 24, दो.62

23) वही " " " " " दो. 75

24) वही " " " " " पृष्ठ 82

25) सप्तपदी-5 (दोहा संग्रह), सं. देवन्द्र शर्मा 'इन्द्र', पृष्ठ 45, दो.2

26) हरेराम 'समीप', ''जैसे'' (दोहा संग्रह), दो. 80

27) वही " " " " " दो. 82

28) वही ” ” ” ” ” दो. 130

29) वही ” ” ” ” ” दो. 154

30) विश्व प्रकाश दीक्षित 'बटुक' कृत, तुज़ुक हजारा, दो. 140

31) सप्तपदी - 5, सं. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', दो. 80, पृष्ठ 82

32) वही ” ” ” ” दो. 84, पृष्ठ 82

33) वही ” ” ” ” दो. 90, पृष्ठ 83

34) दोहा दशक-2, सं. अशोक 'अंजुम', दो. 32, पृष्ठ 51

35) वही ” ” ” ” ” दो. 32, पृष्ठ 51

36) वही ” ” ” ” ” दो. 72, पृष्ठ 90

37) विष्णु चतुर्वेदी 'विराट सतसई', दो.408

38) अनन्तराम मिश्र 'अनंत' कृत 'नावक के तीर' संग्रह, दो.116

39) वही ” ” ” ” ” दो. 139

40) वही ” ” ” ” ” दो. 12

41) सप्तपदी-5, दोहा संग्रह, सं. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', दो.11, पृष्ठ 46

42) हरेराम समीप कृत 'जैसे' (दोहा संग्रह), दो.76

43) वही ” ” ” ” ” दो. 91

44) अनंतराम मिश्र कृत 'नावक के तीर', दो.37

45) वही ” ” ” ” ” दो. 48

46) वही ” ” ” ” ” दो. 685

47) हरेराम 'समीप' कृत 'जैसे', दो.319

48) सप्तपदी-5 सं. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', दो.12, पृष्ठ 32

49) सप्तपदी-5 सं. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', दो.16, पृष्ठ 47

50) दोहा दशक-2, सं. अशोक 'अंजुम', दो.32, पृष्ठ 99

51) रामेश्वर हरिद कृत 'सारांश' संग्रह, पृष्ठ 20

52) विष्णु चतुर्वेदी 'विराट सतसई', दो.162

53) वही ” ” ” ” ” दो. 204

54) हरेराम 'समीप' कृत 'जैसे' (दोहा संग्रह), दो.313

55) सप्तपदी - 1, सं. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', दो.24, पृष्ठ 34

56) वही ” ” ” ” दो. 30, पृष्ठ 34

57) वही ” ” ” ” दो. 30, पृष्ठ 34

58) वही ” ” ” ” दो. 48, पृष्ठ 36

59) वही ” ” ” ” दो. 6, पृष्ठ 46

60) वही ” ” ” ” दो. 98, पृष्ठ 56

61) सप्तपदी-5, सं. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' (दोहा संग्रह), दो.22, पृ. 19

62) वही ” ” ” ” ” दो. 25, पृष्ठ 20

63) वही ” ” ” ” ” दो. 32, पृष्ठ 20

64) वही ” ” ” ” ” दो. 35, पृष्ठ 35

65) वही ” ” ” ” ” दो. 56, पृष्ठ 37

66) वही ” ” ” ” ” दो. 23, पृष्ठ 47

67) वही ” ” ” ” ” दो. 45, पृष्ठ 50

68) वही ” ” ” ” ” दो. 70, पृष्ठ 67

69) वही ” ” ” ” ” दो. 76, पृष्ठ 67

70) वही ” ” ” ” ” दो. 1, पृष्ठ 73

71) वही ” ” ” ” ” दो. 29, पृष्ठ 76

72) अनन्तराम मिश्र 'अनंत' कृत 'नावक के तीर' (दोहा संग्रह), दो.479

73) वही ” ” ” ” ” ” दो. 485

74) सप्तपदी-5, सं. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' (दोहा संग्रह), दो. 9, पृष्ठ 102

75) वही ” ” ” ” ” दो. 13, पृष्ठ 102

76) वही ” ” ” ” ” दो. 74, पृष्ठ 109

77) दोहा दशक-2, सं. अशोक अंजुम (दोहा संग्रह), दो. 90, पृष्ठ 55

78) वही ” ” ” ” ” दो. 93, पृष्ठ 56

79) बिहारी सतसई

80) दोहा दशक-2, सं. अशोक अंजुम, दो.34, पृष्ठ 63

81) वही ” ” ” ” दो. 26, पृष्ठ 62

82) ब्रज किशोर शर्मा शैदी कृत 'तिराहे पर खडा दरख्त', दो.40

83) वही ” ” ” ” ” दो. 62

84) विष्णु चतुर्वेदी कृत 'विराट सतसई', दो.384

85) अनंतराम मिश्र कृत 'नावक के तीर', दो.548

86) वही " " " " " दो. 575

87) गो. तुलसीदास का बहुचर्चित नीतिपरक दोहा।

88) 'अनन्त' कृत 'नावक के तीर', दो.577

89) सप्तपदी-5, सं. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', दो.35, पृष्ठ 49

90) हरेराम समीप कृत 'जैसे' (दोहा संग्रह), दो.144

91) वही " " " " " दो. 157

92) वही " " " " " दो. 457

93) कबीरदास का जनप्रचलित दोहा

94) सप्तपदी-5, सं. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', दो.42, पृष्ठ 64

95) वही " " " " " दो. 12, पृष्ठ 60

96) वही " " " " " दो. 13, पृष्ठ 60

97) अनंतराम मिश्र 'अनत' कृत 'नावक के तीर', दो.651

98) दोहा दशक-2, सं. अशोक अंजुम, दो.66, पृष्ठ 41

99) वही " " " " " दो. 33, पृष्ठ 111

100) वही " " " " " दो. 78, पृष्ठ 54

101) महेश दिवाकर कृत 'युवको! सोचो!'', पृष्ठ 47

102) हरेराम समीप कृत 'जैसे' संग्रह, दो.201

103) दोहा दशक-2, सं. अशोक अंजुम, दो. 13, पृष्ठ 13

104) वही " " " " " दो. 9

105) विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक' कृत 'बटुक की कटुक सतसई', दो.692

106) वही " " " " "

107) सप्तपदी-1, सं. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', दो. 12. पृष्ठ 74

108) सप्तपदी-5, सं. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', दो.62, पृष्ठ 24

109) वही " " " " दो. 15, पृष्ठ 33

110) वही " " " " दो. 38, पृष्ठ 49

111) वही " " " " दो. 32, पृष्ठ 62

112) वही " " " " दो. 69, पृष्ठ 81

113) वही " " " " दो. 43, पृष्ठ 106

114) दोहा दशक-2, सं. अशोक अंजुम संग्रह, दो.57, पृष्ठ 113

115) ब्रजकिशोर वर्मा, शैदी कृत ''हम जंगल के फूल'' (दोहा सतसई), दो.195
116) महेश दिवाकर कृत युवको! सोचो! (दोहा संग्रह), पृष्ठ 73
117) हरेराम समीप कृत 'जैसे' (दोहा संग्रह), दो.88
118) वही " " " " दो. 264
119) वही " " " " दो. 294
120) वही " " " " दो. 419
121) विश्व प्रकाश दीक्षित 'बटुक' कृत 'तुज़ुक हज़ारा' दो.46
122) वही " " " " " दो. 846
123) सप्तपदी-5, सं. देवन्द्र शर्मा 'इन्द्र' (दोहा संग्रह), दो.6, पृष्ठ 18
124) वही " " " " " दो. 26, पृष्ठ 48
125) वही " " " " " दो. 48, पृष्ठ 36
126) वही " " " " " दो. 50, पृष्ठ 36
127) वही " " " " " दो. 39, पृष्ठ 91
128) वही " " " " " दो. 7, पृष्ठ 102
129) वही " " " " " दो. 89, पृष्ठ 111
130) वही " " " " " दो. 65, पृष्ठ 108
131) विष्णु चतुर्वेदी कृत ''विराट सतसई'', दो.1
132) वही " " " " " दो. 715
133) वही " " " " "
134) दोहा दशक-2, सं. अशोक अंजुम, दोहाकार-दिनेश रस्तोगी, दो.7
135) वही " " " " " दो. 11
136) वही " " " " " दो. 22
137) वही " " " " दोहाकार - रामानुज त्रिपाठी, दो.11
138) रामेश्वर हरिद कृत 'सारांश' दोहा संग्रह, पृष्ठ 11
139) ब्रजकिशोर वर्मा शैदी कृत, 'हम जंगल के फूल' (दोहा सतसई), दो.88